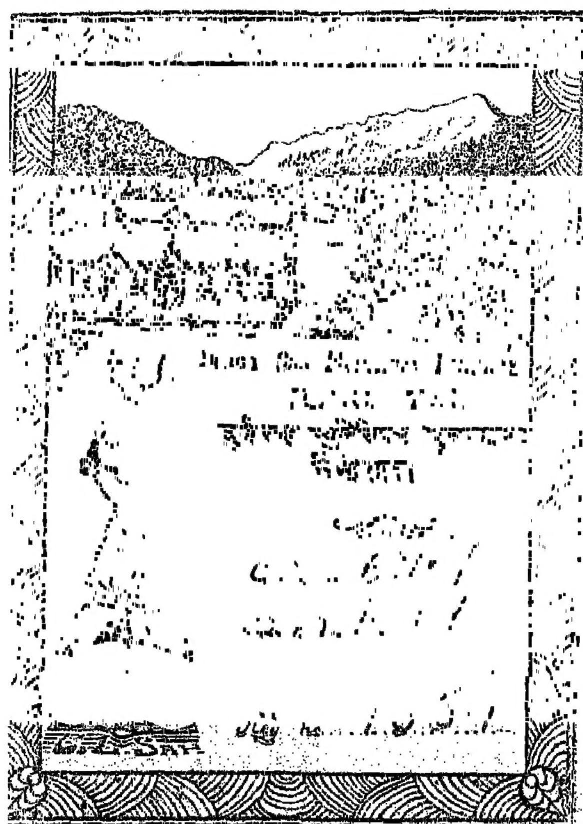


पानी-पाँड़े

(पढ़िये-हँसिये)

हास्यरसावतार

पं० कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच'

एम० ए०, काव्यतीर्थ

मूल्य

दो रुपया पचास न० पै०

प्रकाशक—



तृतीय संस्करण

अप्रैल १९५८

मुद्रक—
राष्ट्रभाषा मुद्रणालय,
लहरतारा, वाराणसी-४

प्रार्थना

हे प्रभो! wanted[1]—प्रकाशक, पोस्ट मुझको दीजिये।
और जितने कैण्डिडेट[2] हों दूर उनको कीजिये॥
लीजिये मुझको शरण में मोस्ट[3] ओबिडियेण्ट[4] हूँ।
आपके सर्वेण्ट[5] के सर्वेण्ट का सर्वेण्ट हूँ॥

पास एम० ए० कर चुका हूँ, आज कल बेकार हूँ।
बाप माँ की नजर में, मैं 'जँगरचोर' चमार हूँ॥
कीजिये ऐसी कृपा, अब आप सा मौला मिले।
और बीबी से मुझे गाली न 'सरबौला' मिले॥

हैट चश्मा से सुशोभित आपकी मुख-कान्ति है।
'केन[6]' कर का, क्लर्क मंडल की मिटाता क्रान्ति है॥
नित्य पहली डेट[7] का कर आपकी पदवन्दना।
लोग अपनी टेंट करते गर्भ हैं उन्नतमना॥

आप 'ऑफिस' के मनोहर राज्य में आसीन हैं।
सैकड़ों ही क्लर्क-गण पद-वन्दना में लीन हैं॥
कीजिये ऐसी कृपा, मैं नित्य आभारी बनूँ।
आपका नौकर बनूँ, नाउ बनूँ, बारी बनूँ॥

---

१ नौकरी का विज्ञापन। २ उम्मीदवार। ३ सबसे अधिक ४ आज्ञाकारी। ५ नौकर। ६ बेंत। ७ तारीख।

"प्रेम-संगीत"

तुम सिनेमा-ऐक्ट्रेस हो सुन्दर
मैं होटल का दरबान प्रिये!
तुम 'ब्लाटिंग[1]पेपर' सी सुफेद,
मैं "ब्लैक इंक" हूँ 'स्वान' प्रिये!!

मैं 'एबीसीनिया' सा दुर्बल,
तुम 'इटली' हो बलवान प्रिये!
मत पकड़ो तुम चुटिया मेरी,
मैं पकड़ूँ दोनों कान प्रिये!!

दफ्तर से वापस आने पर,
करना सुख का सामान प्रिये!
'द्राक्षासव' से बढ़ कर 'टॉनिक[2]'
है तेरी मृदु मुस्कान प्रिये!!

तुम अपने अधरों से छू दो,
ये अधर हमारे प्रान-प्रिये!
लालिमा—लीन हो जायेंगे,
क्या होगा खाकर पान प्रिये!!

---

१ सोख्ता। २ शक्ति-वर्धक दवा।

कपड़ों लत्तों गहनों के मिस,
सर पर सवार हो आन प्रिये !
इस मेरे कोमल सर को क्या,
समझा है कठिन मचान प्रिये !!

भीगी बिल्ली बन जाता हूँ,
होतीं जब क्रुद्ध महान् प्रिये !
मैं चकित 'चीन' सा दीन बना,
तुम बनी विकट 'जापान' प्रिये !!

ये अधर हमारे हैं 'अछूत',
तुम 'अम्बेडकर' समान प्रिये !
जो चाहो तुम इनको कर दो,
सिख मुस्लिम या क्रिस्तान प्रिये !!

तुम पा सकती हो दो हजार,
मैं कोरा कवि—सम्मान प्रिये !
तुम दोहावली 'दुलारे' की,
मैं हूँ 'हरिऔध' सुजान प्रिये !!



मैं और तुम

मैं महा मरुस्थल मारवाड़,
तुम शिमला और मंसूरी।
मैं महुए का ठर्रा केवल,
तुम हो शराब अंगूरी॥
तुम फ्रेञ्च[1] और मैं रूसी[2],
तुम हो लेमोनेड, मैं जूसी॥

मैं बिना तेल का हूँ मसाल,
तुम हो बिजली का लटटू।
तुम लेटेस्ट माडेल फोर्ड[3] कार,
मैं सड़ियल अड़ियल टट्टू॥
तुम मैजिस्ट्रेट मैं हूँ रईस।
मैं हूँ पब्लिक, तुम हो पुलीस॥

मैं हूँ घोंघा घनघोर प्रिये।
तुम मंजुल मुक्ता-माला।
मैं हूँ चोखा चौपदा देवि।
'तुम बच्चन की 'मधुशाला'॥

---

१ फ्रांस निवासी। २ रूस देश निवासी। ३ सबसे नये ढङ्ग की मोटर।

तुम हो गोरी, मैं हब्शी[१] !

तुम हो बिस्कुट, मैं लप्सी ?!

तुम टॉकी सिनेमा हो सुन्दर,

मैं हूँ तुरही का पोंपा।

तुम हो कोयल की स्वर-लहरी,

मैं भेलूपुर[२] का भोंपा ॥

मैं कक्षा तुम मॉनीटर[३]।

मैं पाइप, तुम हो मीटर[४] !!

तुम गुपचुप रसगुल्ला सफेद,

मैं रेवड़ी और अनरसा !

तुम शानदार पिस्तौल प्रिये !

मैं जीर्ण फावड़ा फरसा !!

तुम वैकेंसी[५], मैं कैण्डीडेट[६] !

मैं हूँ पोंगा, तुम अप-टु-डेट[७] !!

---

१ एक जङ्गली जाति।

२ काशी का एक मुहल्ला, यहाँ बिजली का पावर हाउस है।

३ कक्षा की व्यवस्था का निरीक्षक विद्यार्थी।

४ पानी के कल के ऊपर लगा हुआ पानी-खर्च नापने का यंत्र।

५ खाली नौकरी।

६ उम्मीदवार।

७ नयी रोशनी का।

मैं रजपूती साफा भरकम,
तुम टोपी दिव्य दुपल्ली !
मैं हूँ खोजवाँ[1] का गुड़हट्टा,
तुम खरी कचौड़ी[2] गल्ली ॥
मैं कॉटेज[3] तुम हो कैसिल[4] !
मैं हैण्डप्रेस[5], तुम ट्रेडिल[6] !!

तुम सजी लखनवी 'सुधा' सरस,
मैं हूँ पटने का 'योगी' ।
तुम क्षीण पारसी बाला हो,
मैं स्थूल सेठ रस्तोगी ॥
तुम हो बाबर, मैं साँगा !
मैं हूँ एक्का, तुम ताँगा[7] !!

मैं विधवाश्रम का हूँ मन्त्री,
तुम हो विवाह—विज्ञापन !

---

१ काशी का एक मुहल्ला, यहाँ गल्ले तथा गुड़ आदि की दुकानें अधिकतर हैं। २ काशी का एक मुहल्ला, यहाँ मिठाई पूड़ी की दुकानें हैं। ३ झोपड़ी। ४ किला। ५ हाथ का प्रेस। ६ नये ढंग की छापने की मशीन।

७ पाठान्तर—तुम हो ताजा मैं बासी।
तुम अफसर, मैं चपरासी ॥

मैं बैठा ठाला हूँ एम० ए०,
तुम दस रुपये की 'ट्यूशन' ॥
तुम 'बेंत' और मैं 'सोंटा'।
तुम 'जरी' और मैं 'गोटा' ॥

तुम ठुकराती हो बार बार;
करती हो क्यों अवहेला!
मैं हृत्तन्त्री का तार प्रिये!
तुम तन्मयता की बेला!
तुम ब्रजभाषा, मैं डिंगल[1]!
तुम रीतिकाव्य, मैं पिंगल ॥

मैं पड़ा तुम्हारे हूँ पीछे,
अब लेकर लम्बी लाठी!
तुम रामायण की हो टीका,
मैं राम नरेश त्रिपाठी ॥
मैं कोड़ पत्र, तुम अलबम[2]।
मैं हूँ सूरन, तुम सलजम ॥

तुम अग्रलेख सम्पादकीय,
मैं केवल अन्तिम पन्ना।

---

१ एक प्रकार की राजपुतानी भाषा।
२ चित्रों का समूह।

तुम दिव्य दुग्ध की धवलधार,
मैं फटा पुराना छुचा[१] ।
तुम फ्लूट[२] और मैं तासा[३],
तुम होटल हो मैं 'बासा'[४] ॥

तुम हो मिस्ट्रेस[५] मेरे घर की ।
मैं हूँ केवल चपरासी ।
तुम हो छलना ललना ललाम,
मैं बेवकूफ विश्वासी ।
तुम हो 'मिस', मैं हूँ दण्डी ।
मैं हूँ कुर्ता, तुम बण्डी ॥



---

१ दूध छानने की चलनी या कपड़े का टुकड़ा ।
२ बाँसुरी । ३ एक प्रकार का बाजा ।
४ एक प्रकार का साधारण हिन्दुस्तानी ढंग का होटल ।
५ मालकिन ।

कुछ यों ही

उन्हें 'टन' से मतलब, हमें 'मन' से मतलब,
उन्हें लाख से है, हमें 'वन' से मतलब।
उन्हें हर तरह है सुडेटन से मतलब,
हमें है मुहल्ला मुलेटन से मतलब॥

हमें है किसी भी न नेशन से मतलब,
न जेकों से मतलब, न जर्मन से मतलब।
हमें हैं नहीं फेडरेशन से मतलब।
फकत हमको अपने नशेमन से मतलब॥

है ज्यों शायरी के लिये 'पन' जरूरी।
पितरपख में जैसे हैं बाभन जरूरी।
ज्यों उपवास के बाद पारन जरूरी।
उन्हें हो गया है सुडेटन जरूरी॥

घड़ी की है आवाज 'टन' 'टन' जरूरी।
पकोड़ी बनाने को बेसन जरूरी।
है पहिली को टीचर को वेतन जरूरी।
है पहिली को उनको 'सुडेटन' जरूरी॥

खरी-खोटी

आप तो मुझसे नहीं पहले मिले!
अब मिले, इतनी 'डिले'[1] करके मिले!!

किस तरह मैं पोस्ट[2] दूँ, बतलाइये,
जब कि मुझको मुफ्त में बी० ए० मिले।

छिपके हैं मेरी बुराई कर रहे,
दोस्त मुझको इस कदर गन्दे मिले।

दूसरों का देख दुख जो हो दुखी,
वे कहाँ अल्लाह के बन्दे मिले।

क्यों कोई मैट्रिक[3] को रक्खे क्लर्क[4] अब,
जब कि दस रुपये में ही एम० ए० मिले।

कैसे हो आजाद यह हिन्दोस्ताँ,
लीडरानाने[5] वतन ठण्डे मिले।

मुस्लिमों को जो उधर जिन्ना मिले।
हिन्दुओं को हैं इधर मुञ्जे मिले।

खोजता उनको शहर भरमें रहा,
घर जो लौटा, सामने घर के मिले।

---

१ देरी। २ नौकरी।
३ अंग्रेजों के हाई स्कूल की अन्तिम परीक्षा पास करने वाला।
४ किरानी। ५ नेतागण।

रे !

क्यों तूँ उदरदरी में इतने ठूँस रहा है पूए !
क्यों सब रबड़ी और मलाई चाट गया रे मूए !
हम सब देख डरे !
माल मिला है तुझे पराया,
इससे तूने किया सफाया !
तीन पचीस खा गया पूरी,
पर चेहरे पर शिकन न लाया !
यह कैसा ढब रे !

कोटि कोटि कीटाणु उड़ रहे,
आह पवन के अटल पटल पर !
और मक्षिका-दल के हमले,
हुए हजारों तव पत्तल पर !!
ओ जाहिल जबरे !

कुटिल ! कॉलेरा-प्रूफ सरीखा,
तू बैठा है मार पालथी !
क्या यह पूर्व जन्म में तेरी,
उदर-दरी चौपाल-पाल थी !
अब तो कुछ थक रे !

आँखें निकल सी रहीं तेरी,

स्वेद-धार से नहा रहा है!

तोंद फटेगी अब यह तेरी,

ले डकार तू महा रहा है!

ओ बलि के बकरे!

अनुभव !

जब कविसम्मेलन में डँट कर,
सब कवियों को जलपान मिला।
तब जा करके पण्डाल बीच,
चिल्लाने का अरगान मिला।

उठता है सोकर आठ बजे,
सोता है साढ़े पाँच बजे॥
यह कुम्भकर्ण का नाना है,
नोकर मुझको शैतान मिला।

थूकता रहा घर भर में मैं,
हो लाल उठा कमरा सारा।
सिरहाने ही रक्खा था पर,
मुझको न कहीं पिकदान मिला।

उनकी लम्बी मूँछें आकर,
दाढ़ी से यों हैं मिली हुई।
मानों अब चीनी सरहद से,
आ करके है जापान मिला॥



विरह का गीत

तुम्हारी याद में खुद को बिसारे बैठे हैं।
तुम्हारी मेज पर टँगरी पसारे बैठे हैं।

गया था शाम को मिलने मैं पार्क में मिस से,
वहाँ पर देखा कि वालिद हमारे बैठे हैं !!

जरा सा रूप का दर्शन तो दे दो आँखों को,
बहुत दिनों से ये भूखे बेचारे बैठे हैं।

ये काले बाल औ इनमें गुँथे हुए मोती,
ये राजहंस क्या जमुना किनारे बैठे हैं ?

गया जो रात बिता घर तो बोल उठे अब्बा,
इधर तो आओ हम जूते उतारे बैठे हैं !



अपूर्व ध्यान

शोभित कर सिगरेट लिये।
मुच्छ-विहीन बदन पर पाउडर-लेपन ललित किये।
करमें 'केन'[1], पाँव में 'डासन'[2], सर पर हैट दिये।
बोलत बैन बराबर गिटपिट, बाण्डी कुण्ड पिये।
गुरुजन को नित डाँट बतावत, 'बस अब चुप रहिये'।
निशि दिन इष्टदेव 'फैशन'-पूजन, इनके जरिये।
चश्मा से है नाक मनोहर अति सुन्दर लखिये।
मनों दुचश्मी हे (ه) के नीचे शोभित बड़ी इये (ے),



१ छड़ी। २ चरमर ध्वनिवाला जूता।

नोंक झोंक

इन मेरे कपटी मित्रों का,
व्यवहार न जाने क्या होगा !
यही रहा तो कुछ दिन में,
संसार न जाने क्या होगा ?
मानते न हैं सम्पादक जी, सब लेख बटोरे जाते हैं।
सड़ियल रद्दी कूड़ा करकट कतवार न जाने क्या होगा ॥

चिकना जिसका हो कवर नहीं,
हों चित्र न सिनेमा स्टारों के।
मोटा खद्दर के चद्दर सा,
अखबार न जाने क्या होगा।

परसाल मुझे होली पर थे,
जूते भेजे साली जी ने।
इस साल इलाही अब उनका,
उपहार न जाने क्या होगा !
देते हैं रुपया एक नहीं, हैं कभी छनाते भंग नहीं।
फिर तुम्हीं बताओ अब जाकर ससुराल न जाने क्या होगा !!

किससे क्या कहें कौन समझे,
अब सुनकर भी अनसुनी करें।

छायावादी कविताओं का
भण्डार न जाने क्या होगा?

× × ×

रक्षण निमित्त रुपये लेकर
भक्षण करते हैं शर्म नहीं।
ऐसे हैं जहाँ सिपाही ही,
सरदार न जाने क्या होगा।
वर्षा का वर्षा लगा है अब
चरने शिक्षा का क्षेत्र सभी
उपकार अगर यह मान लिया,
अपकार न जाने क्या होगा?
इस बार यहाँ बादाम मिर्च
विजया हँड़िया औ सिलबट्टा,
लेकर चलना है ठीक इन्हें,
उस पार न जाने क्या होगा?



हँसते हुए मकान-मालिक के प्रति

धँस कर जमीन अन्दर सहाय
टिन के ऊपर बन्दर सहाय
बाहर सहाय अन्दर सहाय
शाबास कृष्ण चन्दर सहाय

क्या खूब मकान बनाया है
घर भर को टिन से छाया है
ईंटों का फर्श बिछाया है
मुन्शी जी की यह माया है

बूँदें जब पड़ती हैं पड़ पड़
टिन करती है तड़ तड़ तड़ तड़
दरवाजे करते हैं भड़ भड़
बीबी जी करती हैं बड़ बड़

टिप्पी कारी धुल जाती है
चींटों की सेना आती है
मेरी तबियत घबड़ाती है
हद्द-तर छाती थर्राती है

करता हूँ केवल हाय हाय
शाबास कृष्ण चन्दर सहाय
दीवाल से पानी चूता
मेरा थक जाता बस बूता

दरवाजे करते हैं चर मर
जैसे चर मर करता जूता
घर नहीं दूसरा मिल पाता
क्या करूँ चित्त है घबड़ाता

क्या लेख लिखूँ कैसा नाटक
इस घर से ही हूँ छक जाता
कोई न सूझता है उपाय
शाबास कृष्ण चन्दर सहाय



पेट-पूजा

जब रहता है भरा, विश्व दीखता है हरा,

नीरस भी सरस दिखाता अभिराम है।

जब रहता है रिक्त, हरा भी दिखाता शुष्क,

सुन्दर भी अमित असुन्दर निकाम है।

तुझसे ही प्रकट चराचर हुआ है प्रिय,

तेरे ही निमित्त यह सारा काम धाम है।

उदर! उदार! धार! जय जयकार तेरी,

ए रे पेट! लेट लेट तुझको प्रणाम है।

आँखें रिकमेण्ड[1] करती हैं जिस भोजन को,

करते स्वीकार उसे, बड़े शीलवान हो।

जीभ-अर्दली की रोक टोक है किसी को नहीं,

देते निज गेह में सभी को सदा स्थान हो।

भस्म कर डालते हो क्रोध से समस्त अन्न,

फिर भी न होते शान्त ऐसे तेजवान हो।

सूक्ष्म रूप पेट, त्यों विराट रूप तोंद तुम्हीं,

नाना नाम गोत्र बड़े महिमानिधान हो।

पेट जिसका हो बड़ा 'पेटू' कहते हैं उसे,
बड़े मुख वाले को तो 'मुक्खू' नही कहते।
अच्छे कान वाले को न 'कानू' कहता है कोई,
लम्बी नाक वाले नाम 'नक्कू' हैं न लहते।
पेट की प्रसन्नता से होते हैं प्रसन्न सब,
पेट की है ज्वाला से समस्त जीव दहते।
रख कर पेट में अपार अन्न राशि, फिर
विश्व में पधारने को 'पेट' में ही रहते।

जीवन से लेकर मरण तक धन्धा यही,
फिर भी न पेट को प्रसन्न कर पाते हैं।
बरही हो या कि तेरही हो, लोग बैठ बैठ,
पेट की प्रधानता के नित्य गीत गाते हैं।
पेट जी हैं नेता ये ही रखते प्रबन्ध ठीक,
ये ही अव्यवस्था और गदर मचाते हैं।
कविता करैया कवि बिना पेट पूजा किये,
षटरस बिना नवो रस सूख जाते हैं।

'कविजी की पत्नी'

कोयल रंग निहारि छिपी,

धुति भैंस की देखि कै लागत फीकी ।

ऊँट छिपे सब चाल बिलोकत,

काग छिपे सुनि बोलि सुनीकी

हाँथी हटे लखि लोचनों की छटा,

मिस्सी किये हैं घनी सुरती की

हुक्का लिये खड़ी खोपड़े पै,

सुतनी सी तनी पतनी कवि जी की !!



"अनन्य अभिलाषा"

चिन्ता न हो देश की अपने, मातृभूमि को भूलूँ।
सदा खुशामद से औरों की, मन में अपने फूलूँ।
मधुर चापलूसी सुमन्त्र को जपूँ, चढ़ाऊँ डाली।
दावत के ही हेतु करूँ मैं, सभी खजाना खाली॥
त्यों गौरांग महाप्रभुओं को, सादर शीश नवाऊँ।
खिदमत करूँ अफसरों की मैं, 'सर' की पदवी पाऊँ॥

पुरस्कार का लालच देकर, सबसे लेख लिखाऊँ।
सच असत्य सम्वाद प्रकाशित कर प्रवीण कहलाऊँ।
काट काटकर कटिंग बटोरूँ, उन्हें पत्र में छापूँ।
निन्दा करूँ विरोधी गण की, उनकी गरदन नापूँ॥
कभी रसातल कभी स्वर्ग, जिसको चाहे पहुँचाऊँ।
किसी पत्र का बस प्रधान मैं सम्पादक बन जाऊँ॥

अण्टसण्ट शब्दों को ठूसूँ, दिखलाऊँ हथकण्डे।
करूँ शिफारिश, करें प्रशंसा सब साहित्यिक पण्डे॥
अलंकार को दूर भगाऊँ, मात्रा-गण को बाटूँ।
ध्वनि का ध्वंस करूँ क्षणभर में, गला काव्य का काटूँ॥
स्वच्छ छन्द में पद्य लिखूँ, पूरा अन्धेर मचाऊँ।
सम्मेलन में करूँ प्रेसाइड, 'कवि सम्राट्' कहाऊँ॥

सुन्दर श्वेत बसन कर धारण, लम्बी पगड़ी बाँधूँ।
कपट और छल के बल, केवल अपना मतलब साधूँ॥
ईंटा पत्थर कूट पीस कर, उसे महौषध कर दूँ।
लेकर गहरी फीस रोगियों से जेबों को भर दूँ॥
यम को मैं निश्चिन्त करूँ, बस नित्य मरीज फसाऊँ।
नाड़ी-ज्ञान-विहीन रहूँ, पर वैद्यराज कहलाऊँ॥

ताँगे मोटर रक्खूँ अपने, उनपर करूँ सवारी।
जिन्हें देखकर लोग कहैं 'यह तो डाक्टर है भारी'॥
जहाँ चरण मेरे पड़ जावें, यम के दूत पधारें।
रोग नहीं पर रोगी को ही मेरे 'मिक्श्चर'[1] मारें॥
थर्मामीटर[2] स्टेथिस्कोप[3] को पॉकेट में लटकाऊँ।
सभी मर्ज में इंजेक्शन[4] दूँ, एल० एम०[5] एस० कहलाऊँ॥

घर में बसन विदेशी पहिनूँ, बाहर पहिनूँ खद्दर।
घर में वस्त्र रेशमी ओढ़ूँ, बाहर ओढ़ूँ चद्दर॥
सभा-भवन में परस्त्रियों को "माता" "बहिन" पुकारूँ।
घर के अन्दर निज भावज से मैं व्यभिचार विचारूँ॥
भीतर भरे भाव हों भीषण, पर 'श्रद्धेय' कहाऊँ।
प्रभो! प्रार्थना यही आपसे मैं 'नेता' बन जाऊँ॥

---

१ दवा (कई दवाओं का मेल) २ ज्वर नापने का यन्त्र ३ फेफड़ों की हालत जानने का यन्त्र ४ सूई लगाना ५ डाक्टरों की एक पदवी।

मन में सदा द्वेष ईर्ष्या हो, दुर्विचार हों व्यापक।
आती नहीं शुद्ध हो भाषा, बनूँ उच्च अध्यापक॥
नित्य अबोध शिष्यगण पर भी, बुरी दृष्टि मैं डालूँ।
चाहे जिसे 'फेल' कर दूँ, यों सारी कसक निकालूँ॥
समझूँ 'मैं ही बादशाह हूँ', ऐंठ भरा इठलाऊँ।
दृष्टि शनीचर सी हो मेरी, मैं 'टीचर' कहलाऊँ॥

निन्दा करूँ सभी सत्कवियों की बरबस बेखटके।
ईर्ष्या द्वेष प्रपञ्च 'मन्त्र' को जपूँ, लड़ूँ त्यों डटके॥
कलम थामने मुझे नहीं चाहे आवे लोहे की।
नहीं बता सकता भी होऊँ, परिभाषा दोहे की॥
फिर भी औरों के बल पर मैं, व्यर्थ विवाद बढ़ाऊँ।
प्रभो! प्रार्थना यही आपसे, आलोचक बन जाऊँ॥

'ओल्ड' फूल्स' हैं 'फादर और मदर क्यों' इनको मानूँ।
भाई बन्धु गँवार अज्ञ हैं, क्यों इनको पहिचानूँ॥
पत्नी मेरी पतिव्रता है, यद्यपि सुन्दर तन की।
'मिस' के आगे काली न हो सकती है मेरे मन की॥
बी० ए० पास मिले बस बीबी, मैं 'एम० ए०' हो जाऊँ।
घूमूँ संग, सिनेमा देखूँ, पूरा सभ्य कहाऊँ॥



इक्केवान के प्रति

ले चल मुझे बुलानावाले तू, इक्केवाले धीरे धीरे!

तीन बजे कालेज से धाये, अभी सातही तो बज पाये!

डेढ़ मील हम हैं चल आये, चल मतवाले धीरे धीरे!!

धीरे चलना नीति नहीं क्या? चल धीरे कुछ भीति नहीं क्या?

घोड़े से है प्रीति नहीं क्या? रास उठाले धीरे धीरे!!

जितना यह घोड़ा चलता है, उतना ही कोड़ा चलता है!

कह, क्या यह थोड़ा चलता है? रे गुस्ताले धीरे धीरे!!

करता क्यों भीषण प्रहार है? यह कैसा तेरा दुलार है?

इक्का ही तेरा उलार है, यह बनवा ले धीरे धीरे!!

यह घोड़ा है मौन मनस्वी, अस्थि-चर्म-अवशिष्ट तपस्वी,

तू सारथी अपार यशस्वी, यह सुख पाले धीरे धीरे!!

कहीं दौड़ता तीव्र पवन सा, कहीं शान्त नीरव निर्जन सा

जीवन के उत्थान पतन सा, दृश्य दिखाले धीरे धीरे!!

अरे देख, घोड़ा यह भागा, रे! सम्हाल, है बड़ा अभागा!

कुछ विचार ले पीछा आगा, और सताले धीरे धीरे!!

अभी कहाँ था इतना धीमा, अब सत्वरता हुई असीमा,

अरे! कराले अपना बीमा, जान बचा ले धीरे धीरे!

---

१ पुराना बुद्धू।

अभी दूर मेरा मकान है, अन्धकार-आवृत जहान है,

होता अब तेरा 'चलान' है, लैम्प जला ले धीरे धीरे !!

यह घोड़ा स्वच्छन्द सरीखा, मनमौजी मतिमन्द सरीखा,

छायावादी छन्द सरीखा, इसे मना ले धीरे धीरे !!

ले चल मुझे बुलानेवाले तू, इक्केवाले धीरे धीरे !!

●

दोहावली

मेरी सब बाधा हरै, सुखदायिनि सरकार।
जाकी कृपा अपार ते, डिपटी होत चमार॥

आखर एक न जानहीं, सड़क बटोरन जायँ।
सोउ तेरे परसाद ते, एम० यल० सी० कहलायँ।

लण्ठ जण्ट बहु ह्वै गये, मैजिस्ट्रेट चमार।
पाइ क्रोध बैठे रहैं, बहु बी० ए० बेकार॥

'सर' होते तेरी कृपा पाकर गंगी डोम।
बसै सुखद सरकार यह, नित हमरे हिय-होम॥

चाहो जो सुख शान्ति को, एहि जगती में आय।
रटहु याहि दोहावली, और न आन उपाय॥

निन्दा किये बड़ेन की, नाम बहुत बढ़ि जाय।
शौकत अली बली भये, गाँधी को गरियाय॥

बूढ़ भये तो क्या भया, करहु व्याह सों प्रेम।
पचपन बरस बिताय के, सौकत बियहे मेम॥

दान कबहुँ नहिं दीजिये, यासों कष्ट महान्।
बलि सीता हरिचन्द को, है प्रत्यक्ष प्रमान॥

या दुनियाँ में आइकै, सबको द्रव्य समेट।
कर ले निन्दा सुजन की, भर ले अपना पेट॥

नाम चाहो साहित्य में, आलोचक बन जाव।
गुण की चर्चा मत करो, सबको दोष दिखाव॥

युग विज्ञापन को अहै, मे सब नोटिसबाज।
कलम न थामहुन आवही, सोउ भये कविराज॥

ग्रन्थ लिखाकर अन्य सों, अपने नाम छपाय।
हिन्दी के सेवक बनत, डूब न मरत लजाय॥

सबही लेखक ह्वै रहे, सबको लगी छपास।
सब ही हैं करने लगे, अब साहित्य-विकास॥

जो तै कवि बनना चहो, पढ़ि पुस्तक दुइ चार।
लागो बजावन बैठि तुम, "हृत्तन्त्री के तार"।



आत्म-विज्ञापन !

मैं सीमा का विस्तार किया करता हूँ।
मैं जनता का उपकार किया करता हूँ।
मैं कविता का व्यापार किया करता हूँ।
मैं हिन्दी को उद्धार किया करता हूँ॥

मैं इधर उधर व्याख्यान दिया करता हूँ।
मैं कवियों को वरदान दिया करता हूँ।
मैं सम्पादक हूँ दिव्य अनोखा पावन,
लेखों को मैं सम्मान दिया करता हूँ।

कविता पढ़ने को मार किया करता हूँ।
कवि-सम्मेलन को प्यार किया करता हूँ।
कविताएँ अपनी भेज एडीटर गण को,
मैं सब गन्दा अखबार किया करता हूँ।

दिनभर स्वदेश का ध्यान किया करता हूँ
'जाग्रति' 'उन्नति' 'उत्थान' किया करता हूँ।
पर निशा अवतरण के पीछे चुपके से।
मैं मदिरालय में पान किया करता हूँ।

मैं जग-जीवन का भार लिये फिरता हूँ।
मैं यह पागल व्यापार लिये फिरता हूँ।
अपने कुर्ते के जेबों के ही अन्दर।
मैं गद्य-पद्य-संसार लिये फिरता हूँ।

मैं कवियों का सरदार बना फिरता हूँ।
ग्रन्थों का बस परिवार बना फिरता हूँ।
मैं अएटसएट मनमाना लिख लिख कर ही,
अलबेला टीकाकार बना फिरता हूँ।

मैं मधुशाला-रोजगार लिये फिरता हूँ।
मैं प्यालों का कतवार लिये फिरता हूँ।
मैं अपनी आहों के पीछे चिरवादित,
टूटा हृत्तन्त्री-तार लिये फिरता हूँ॥



स्तुति

हे सहेली !

बहुत उत्सुक हो रहा हूँ, देखता तुमको निरन्तर।
नव निरीक्षण कर रहा हूँ, आँख पर चश्मा लगाकर ॥
समझना तुमको कठिन, तुम हो रही 'अनसीन पेपर'।
बूझ कैसे मैं सकूँ तुमको, न हूँ मैं किंग अकबर।

बीरबल की हे पहेली !

जब कि अबलाएँ सभी भेड़ी सदृश एकत्र होकर।
पहिन जूती उच्च एड़ी की मचाती चारु चरमर ॥
चल पड़ी सिनेमा भवन को, कर बदन मञ्जुल मृदुलतर।
उस समय तुम इस विजन में भर रही आहें निरन्तर।

लेटकर बिल्कुल अकेली !

इस तुम्हारे दृग युगल में विश्व की हिस्ट्री[1] भरी है।
मञ्जुता की, माधुरी की, मोह की मिस्ट्री[2] भरी है ॥
जो हृदय में है उसी की टिप्पणी इनमें धरी है।
विज्ञ जन के हेतु सब सम्वाद की सूची खरी है ॥

ये नये अखबार डेली !



---

१ इतिहास। २ रहस्य।

व्यथा

करूँ मैं अब कैसे अभिसार !

मेढक-वृन्द रव टर्र टर्र से करता है चीत्कार !
कवि सम्मेलन में गाते हों कवि ज्यों राग मलार !

टार्च बैटरी-हीन हो गया,
अन्धकार है तीन हो गया,
एक अजब है सीन हो गया,
सोऊँ पाँव पसार !

जल की धारा डॅटी हुई है,
कीच सड़क से सटी हुई है,
बरसाती भी फटी हुई है,
भीगूँगी लाचार !!

निकट तुम्हारा स्थान नहीं है,
उर में अब अरमान नहीं है,
पनडब्बा में पान नहीं है,
बहुत दूर बाजार !
करूँ मैं अब कैसे अभिसार !!

●

उनकी बातें

मुझसे कुछ और उनसे कुछ कहते,
यों उल्टी सीधी चलें हैं समझाने।
न अब तक आपकी बात हम समझे,
आपकी बात आपही जानें।

खूबियाँ कितनी जमाने की कहैं,
अब है रसगुल्ला बताशा हो गया।
शायरी खिलवाड़ है अब हो गयी,
अब है शायर भी तमाशा हो गया॥

चीखने का आ गया होता जो ढब,
बैठकर किस्मत को यों नहीं रोते।
पहन खद्दर हाथ में झोला उठा,
हम भी लीडर आज बन गये होते॥

हाथ जोरों से हिलाया कीजिए,
आँख से आँसू बहाया कीजिए।
मेज को घूँसे लगाया कीजिये।
इस तरह लीडर कहाया कीजिए॥



शहनाई

गुन गुन गूँज रही शहनाई।

उरई कवि सम्मेलन में हैं जुटे सुकवि समुदाई।

सभी काम तज आये सज धज देखन लोग लुगाई॥

लड़के दौड़े आये सुनकर, अपनी छोड़ पढ़ाई।

पूरे दस घण्टे तक दिन भर मची रही कविताई॥

नर नारी सब लेन लगे थे मुँह बाकर जमुहाई।

एक सुकवि ने बड़े जोर से कविता निजी सुनाई॥

चीख पड़ा बालक कोठे पर आने लगी रुलाई।

मानों देखा हो नयनों से सुरपनखा की माई॥

कवि कवि के मुख ऊपर छाई रंजित पान ललाई।

दर्शक दर्शक ने सुलगाई निज सिगरेट सलाई।

कहैं कबीर सुनो बेटा साधो ये दोऊ पाँड़े भाई।

कविता लता पल्लवित रक्खे रहैं सुखी सुखदाई॥



हे महानिशा के अन्धकार !

हे महानिशा के अन्धकार !
तेरा कैसा सुखमय प्रसार !!
बाबू साहब खाना खाकर,
सो गये नौ बजे ही उदास ।
बीबी साहिबा सिनेमा में,
देखने गयी हैं देवदास !
सखियों के संग यहाँ बैठीं,
ऐंठी स्वरूप अभिमान लिए ।
मुँह के अन्दर हैं पान लिए,
मुँह के बाहर मुस्कान लिए !
ये कालेज के लड़के देखो,
घूरते उन्हें हैं बार बार !
हे महानिशा के अन्धकार !!

❀ ❀ ❀

तेरे अन्दर खद्दरधारी,
ये विकट राष्ट्र के कर्मवीर !
नेता महान् भारत भू के
लेक्चरबाजी के गुरु गंभीर !

बारह बजते ही निकल पड़े।

घर से पुलकित होकर महान् ।

सिर पर रेशम की टोपी धर,

मखमल के पहिने पदत्रान ।।

कछुआ सा बदन छिपा करके,

भागे जाते मछुआ बाजार।

हे महानिशा के अन्धकार ।।

❀ ❀ ❀

प्रातः घाटों पर जा बैठे।

चन्दन घिसते थे धुँवाधार।

होटल में वे पण्डा जी अब,

हैं उड़ा रहे अण्डे अपार!

मादक निवारिणी परिषद् के

मन्त्री जी मनमें भरे मौज।

पीकर ह्विस्की बिल पे[1] करने—

में करते हैं गाली गलौज।

आखिर उनको गिरवी रखनी,

पड़ गयी पुरानी फोर्डकार!

हे महानिशा के अन्धकार ।।

❀ ❀ ❀

---

१ चुकता करना।

दिन भर श्रमियों कृषकों का था,
चल रहा ठाट से कारबार !
घर में, खेतों गलियों में अब,
वे सब सोये टाँगें पसार ।
पर लक्ष्मीवाहन जाग रहे,
हैं निकल पड़े तज कर आराम !
है कहीं गटरगट की बहार,
है कहीं गूँज उठती छम छम !!
हैं कहीं हवन के कुण्ड सदृश ।
जल रहे हवाना के सिगार !!
हे महानिशा के अन्धकार !



गोरखपुर के मच्छर

सुनकर सम्मेलन में मेरा—
आना, अति हर्षाये।
हुए झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे—
मुझसे मिलने आये॥ १॥

बड़े प्रेम से सुना सुनाकर
अपना प्रेम-तराना।
गाने लगे समस्त मस्त हो
सुन्दर स्वागत-गाना॥ २॥

मैंने कहा "कृतार्थ हुआ मैं,
अब जावें इस थल से।
पर वे हटे न एक इञ्च भी
डटे रहे निश्चल से॥

बोले वे—"सम्मेलन है यह
क्या हैं चतुर न पक्के?"
आये होंगे कवि बन बनकर
कितने चोर उचक्के।"

सोवेंगे जो आप, तुरत
गुम होगा कपड़ा लत्ता।
कहिये तो हम रहें जागते
स्वयं जाग अलबत्ता॥

कपड़े लत्ते यहाँ गँवा
कर अपनी यों पामाली।
घर जाने पर क्या न खूब ही
तड़पेंगी घर वाली।"

बोला मैं—"बस चुप रहिये,
मैं हूं न लएल सौदाई।
हटिये," पर न हटे वे, तब मैं
सोया तान रजाई॥

जहाँ रजाई हटती थी, वे
गा उठते थे गायन।
"भनभन भनभन गुनगुन गुनगुन
गुनगुन गुनगुन भनभन भनभन॥

हुआ सबेरा आह! अर्ध-
निद्रा से जब मैं जागा।
पाया नहीं उन्हें, क्या जाने
कहाँ भुरक वह भागा॥

दुखी हुआ उनके वियोग से
या विलोक निज हालत।
सुखी हुआ या, करै फैसला
स्वागत - समिति - अदालत॥

प्रिय-वियोग में प्रेमी उनके
रहते मुख मुरझाये।
पर था मेरा मुँह खुद फूला,
मैं था नहीं फुलाये॥

जब आया पण्डाल बीच
जाने का अवसर सुन्दर।
देखा, वे सब छिपे हुए हैं,
मम टोपी के अन्दर

"अहा आप हैं, आवें आवें
कृपया निकट पधारें।
कुछ विचार विनिमय ही होवें
कुछ तो प्रेम पसारें॥"

पर वे सटक गये, वे हिचके
मुझे प्यार देने में।
ज्यों सम्पादक लेख छापकर
पुरस्कार देने में॥

कुछ भी हो, उनके कारण ही,
कमरे में यों हलचल।
ज्यों छायावादी कविता में
"कल कल पल पल छल छल"॥
कुछ पापिष्ठ उन्हें कहते हैं
'पाजी, रोग-प्रचारक'।
बुद्धिहीन डाक्टर बतलाते
उन्हें मनुज-संहारक॥
पर अब मैं जो कुछ कहता हूँ,
यदि उसको सुन लोगे।
फिर न किसी को यों ही तुम सब,
दोष अकारण दोगे॥
"जब तक हैं रवि, सोम, भौम, बुध,
गुरु, भृगु और सनीचर।
जब तक हैं इक अखिल विश्व में,
सुर, नर, नाग, निशाचर॥
जब जब विद्या मण्डित पण्डित,
जब तक निपट निरक्षर।
अजर रहें ये, अमर रहें ये
गोरखपुर के मच्छर॥"

प्रेम पचाड़ा

खटमल आइ बसो खटियन में।
मच्छर गामा की 'मॅजॉरिटी'[1] है कवि सम्मेलन में।
तब 'माइनॉरिटी'[2] देख देखकर होती चिन्ता मन में।

मच्छर आये, तुम न दिखाये, कहाँ छिपे तकियन में।
क्या 'गोरिल्ला[3] वार' करोगे, नहीं वीरता तन में।
तुम 'एकान्त-प्रेम' के प्यासे, प्रेम न विज्ञापन में।
जैसी है 'पॉलिसी[4]' तुम्हारी, वैसी क्या नेतन में।

या हिटलर में या मुसोलिनी, या मिस्टर साइमन में?
या जिन्ना में, या मुंजे में या स्पीकर[5] टण्डन में?

जैसा मधुरगान कवितामय है तेरे आनन में।
वैसा क्या गातेराम, देव, दूल्ह, मैथिली सरन में?

तुमसा प्रेम प्रकट हो जावे, यदि पूरे नेशन[6] में।
तो फिर कौन फँसा रह सकता है यों फेडरेशन[7] में?

अहो अहिंसा-व्रती, सत्य प्रिय, देशरत्न बातन में।
कभी उग्र तुम, कभी क्षुद्र तुम, कभी शान्त शासन में।

---

१ अधिकता। २ न्यूनता। ३ छुप-छिपकर शत्रु पर आक्रमण करना। ४ नीति। ५ वक्ता। ६ जाति। ७ संघ शासन।

त्वचा चेतना युक्त बनाकर, छिप जाते तुम छन में।
जैसे आँख मिचौनी खेलें बालवृन्द बचपन में॥

सच बतलाना सखे! तुम्हें है सुख उतना ही मन में?
कौंसिल में कांग्रेसी को जितना 'हिन्दी भाखन' में।

या जितना छायावादी को मिलता पागलपन में।
उतना ही सुख तुम पाते हो, इस अपने साधन में।

क्रूर मनुज पशुबल से रत हैं यों तव निर्वासन में।
पर मैं तव अनुरक्त भक्त हूँ, रत तव आराधन में।

तुम सर्वव्यापक महान् हो, इस अपने लघु तन में।
कभी मेज पर, कभी सेज पर, कभी कोट अचकन में।

कभी टाट पर, कभी खाट पर, कभी हैट बूतन में।
तव डर डरे त्रिदेव जगत्पति, शयन करें न भवन में।

हरि समुद्र में, शिव पर्वत में, ब्रह्मा कमलासन में।
तुम प्रसक्त होते यों तन में, ज्यों गाँधी हरिजन में।

या जैसे बीनियाँ आजकल की इँगलिश फैशन में।
जैसा है अनुभव तुममें प्रिय, वैसा क्या वृद्धन में?

जैसी है स्वतन्त्रता तुममें, वैसी क्या युवकन में?
जैसी चपल कला है तुममें वैसी क्या बच्चन में?

तव प्रभात करता कोलाहल है अपार त्रिभुवन में।
कितने ऊष्ण नीर की धारा बही खाट सिञ्चन में।

लाठी चार्ज हुआ खटियों पर धरी गयी निर्जन में।
आह, घाम में घर प्रतप्त की गयीं सूर्य्य-किरनन में।

फिर भी है खटियन के प्रेमी! बसे रहे खटियन में॥
निज स्वदेश, निज जन्मभूमि 'खटिया' के अनुरंजन में।

लगे रहे तुम वीरव्रती से, डिगे न पल भर मन में।
जैसा जन्मभूमि के प्रति है प्रेम भरा तव तन में।

वैसा क्या रूसी, चीनी, जापानी या जर्मन में?
या नेपोलियन में, लेनिन में, किचनर में, नेल्सन में?

डटे रहो मेरे बिस्तर में, जैसे चीनी रन में।
सटे रहो मेरी तकिया में, यथा रेल इञ्जन में।

फँसे रहो चादर में, ज्यों 'लोफर' चन्दा-चिन्तन में।
बसे रहो खटियों के वासी, बसे रहो खटियन में॥

खटमल आइ बसी खटियन में।

कसिया की सड़क

कल गये सभी कवि कुशीनगर,

हो विवश, भरे 'बस'[1] के अन्दर।

बस में थे कवि यों अपार,

मानों मेटिया में हो अचार।

कितने लटके थे अड़क अड़क।

कसिया की सड़क, कसिया[2] की सड़क।।१।।

सकरी थी सड़क, विशाल कहीं,

था ऊँचा नीचा खाल कहीं।

'बे' आफ और 'बंगाल' कहीं,

आकाश कहीं, पाताल कहीं।

'बस' जाती थी भड़क भड़क।

कसिया की सड़क, कसिया की सड़क।।२।।

तनिक तनिक दूरी पर बस थी,

जल भरवाती स्यानी।

जैसे बहुत सुकवि गण कविता–

पढ़ते पी पी पानी।

१—वह मोटर जिसमें १५–२० मनुष्योंके बैठने का स्थान हो

२—गोरखपुर जिले का एक कस्बा।

हम देख रहे थे धड़क धड़क।
कसिया की सड़क, कसिया की सड़क ॥३॥

यद्यपि सम्हालता था ड्राइवर,
लारी थी गिरती उछल उछल।
चश्मे के अन्दर से भी ज्यों,
आँखें लड़ जाती मचल मचल।
होती ध्वनि बस खड़क खड़क।
कसिया की सड़क, कसिया की सड़क ॥४॥

हम सब तो फिर अच्छे थे,
थाना भी थी मनसायन।
लारी में बैठे थे भदन्त,
आनन्द श्री कौसल्यायन ॥
वे कहते थे, कुछ फड़क फड़क।
कसिया की सड़क, कसिया की सड़क ॥५॥

घटी एक घटना पर, जो थी
अति विस्मय-उत्पादक।
फँसी एक लारी थे जिसमें
"सरस्वती" — सम्पादक ॥
वे कहते थे तब तड़क तड़क।
"कसिया की सड़क, कसिया की सड़क" ॥

कितने ही थे उसमें कविगण,
कितने ही थे उसमें वकील।
कुछ हँसते, कुछ रोते मन में,
चल पैदल आये तीन मील॥
सब बोल रहे थे, कड़क कड़क—
"कसिया की सड़क, कसिया की सड़क"॥



नैराश्य गीत

कार लेकर क्या करूँगा ?

तंग उनकी है गली वह, साइकिल भी जा न पाती।
फिर भला मैं 'कार' को बेकार लेकर क्या करूँगा ?

आपने जो लेख भेजा, मैं उसे लौटा रहा हूँ।
मानियेगा मत बुरा, कतवार लेकर क्या करूँगा ?

अब मुझे तज श्रीमतीजी, आज हैं नैहर पधारीं।
बाप माँ भाई बहिन, परिवार लेकर क्या करूँगा ?

छुप सकी मेरी अभी तक एक भी कविता न जिसमें,
मैं भला ऐसा सड़ा अखबार लेकर क्या करूँगा ?

मैं जनाना हूँ नहीं, दो ऊँट के मुँह में न जीरा,
ये सड़े लड्डू कहो दो चार लेकर क्या करूँगा ?



१—मोटर।

भागो फिर एक बार !

देखो वह खटमल-दल, आता घनघोर प्रबल ।
लेगा चूस खून सकल, जो है बना तीव्र तरल ।
खा खा कर लड्डू मगदल ।
पीकर शरबत अनार ॥
या तो मुष्टिका-प्रहार, करो बिना कुछ विचार ।
उर में ध्रुव धैर्य धार, ताको उसे इस प्रकार ।
जैसे चूहे को बिलार ।
जग में हो जय जयकार ।
अथवा तुम दाब दाँव सर पर धर शीश पाँव ।
छोड़ो यह खाट ठाँव, छोड़ो अरे छोड़ो गाँव ।
लो न फिर इसका नाम ।
करो इसे नमस्कार ।
लगै नहीं इनका तार, ये हैं बड़े पाजी यार ।
लेते खून हैं गिरार, ताकत इनकी अपार ।
जल्दी करो स्टार्ट 'कार' ।
भागो फिर एक बार ।



क्यों क्षीण हुआ जाता हूँ ?

तुम पूछ रहे हो मुझसे "क्यों क्षीण हुए जाते हो !"
अच्छा, पहिले दम ले लूँ, फिर तुमको बतलाता हूँ—
"क्यों क्षीण हुआ जाता हूँ !"

घर की हालत कहने में अपनी ही निन्दा होगी,
पर सुनकर निर्णय करिये मैं किससे कम हूँ योगी।
कितना मैं कम खाता हूँ, कितना मैं गम खाता हूँ,
मैं आठ बजे तड़के ही बिस्तर से उठ जाता हूँ—
जितना जिन्ना से गाँधी, मैं "उनसे" घबड़ाता हूँ।
यों क्षीण हुआ जाता हूँ।

उठने का नाम न लेतीं वे पहिले साढ़े दस के,
मैं उठा नहीं सकता हूँ मारे डर के अपयश के।
मन ही मन बड़बड़ करते दमचूल्हा सुलगाता हूँ,
उनके कुत्ते केटी को साबुन से नहलाता हूँ,
बच्चे को बहलाता हूँ, बच्ची को टहलाता हूँ!
यों क्षीण हुआ जाता हूँ।

'आफिस' का हाल न पूछो यह भी आफत क्या कम है।
'नव' को 'दस' कहना पड़ता, 'टाइम' का नया नियम है॥

बैटरी मिलेगी परसों सालों से सुनता आता,
दो एक "बल्ब" हर हफ्ते हैं "फ्यूज"* प्रकाश-प्रदाता।
वे बिगड़ बिगड़ कहती हैं मिट्टी का तेल मँगाओ,
तुम निरे अपाहिज नर हो, मुझको "नइहर" पहुँचाओ।
बाहर न तेल पाता हूँ, भीतर न स्नेह पाता हूँ।
यों क्षीण हुआ जाता हूँ।

घर भर "ब्लैक आउट" है, दम रहा अँधेरे में घुट,
बाहर सुनता हूँ चलता है "ब्लैक मार्केट" का गुट।
सब कुछ है सुलभ वहाँ पर बैटरी बल्ब 'नो डाउट'†।
"राबर्ट ब्लैक" सा कोई जासूस नहीं, सब निरकुंश।
मैं युद्ध और उस पाजी भाजी को गरियाता हूँ।
यों क्षीण हुआ जाता हूँ

नौकर बुड्ढा मँगरू है मेरे नाना का साथी,
इस हेतु समझता मुझको वह भी अपना ही नाती।
कहता कुछ हूँ सुनता कुछ, फिर कभी "नहीं" कुछ सुनता।
'यों इसे किया कर ऐसे', पर कभी नहीं कुछ सुनता॥
सैंतीस मिनट में उससे कह एक बात पाता हूँ।
यों क्षीण हुआ जाता हूँ।

---

* खराब या बेकाम। † निःसन्देह।

पर घड़ी वहाँ की उससे भी आगे चार कदम है।
है प्रगतिशील वह भीषण, है घड़ी या कि टमटम ॥
करता प्रयत्न पर 'टाइम पर पहुँच नहीं पाता हूँ।
यों क्षीण हुआ जाता हूँ।

है दूध न मिलता सुच्चा, 'कण्ट्रोल' मलाई पर है।
यद्यपि होता ही रहता हमला हलवाई पर है।
'ला' की परवाह न करता, वह लापरवाह प्रखर है।
उसके प्रसाद से पीड़ित रहता ज्वर से घर भर है।
फिर भी दफ्तर से आते दोने उधार लाता हूँ।
यों क्षीण हुआ जाता हूँ।

सोने जाता हूँ, उसका भी हाल सुनों सच मानों,
"मिस उड" नेबरहुड में हैं, है उनके पास पियानों।
चीखा करती हैं बेसुध निज स्वर लहरी में खोई,
ऐसा लगता मोटर से दब गया श्वान है कोई।
क्यों बसा सिविल लाइन में मैं इसपर पछताता हूँ।
यों क्षीण हुआ जाता हूँ।

पिछले दस बारह दिन से आ जाता है मुझको ज्वर,
कल मुझे देखने दिन में आये डाक्टर गड़बड़कर।

---

* नियम कानून। † पड़ोस।

[५६]

जब गये हाथ धोने को माँगी साबुन की बट्टी,
मँगरू तुरन्त ले आया मेले की गुड़ की पट्टी।
रोऊँ या हँसूँ अभी तक मैं सोच नहीं पाता हूँ।
यों क्षीण हुआ जाता हूँ।

"सम्मेलन करना खेल नहीं"

हाँ सम्मेलन, कवि सम्मेलन
करने का अद्भुत आयोजन।
जिसका पानी रखना हो तो
त्यागो कुछ दिन पानी भोजन।
जागो कितनी ही रातों को
भूलो अपने घर के प्राणी।
तब आ पावेंगे ये कविगण
लेकर निज कविता कल्याणी।
है यह कुनैन की कटु पुड़िया
मिष्टान्न मधुर पँचमेल नहीं।
सम्मेलन करना खेल नहीं॥ १॥

मैंने भी सम्मेलन करना—
चाहा, हाँ सब कुछ था तयार।
इतने में वृद्ध सभापति का
आया औचक ही एक तार।
"सर्दी लग गयी, जुकाम हुआ"
लो सारा खेल तमाम हुआ!!
यह प्रगतिशील अब कैसे हो
आकुल अतीव हैरान हुआ।

यह सम्मेलन का सग्गड़ है
है वायुयान या रेल नहीं
सम्मेलन करना खेल नहीं ॥ २ ॥

लाने दूसरे सभापति को
जब गया 'कैएट' कर साजबाज।
आ गयी ट्रेन, डब्बा डब्बा
ढूँढ़ा, गायब थे महाराज* ।
चेहरे लटकाये घर लौटे,
सब टाँय टाँय हो गयी फिस्स।
ज्यों दिल्ली से लीडर लौटे
लौटे लन्दन स्टेफर्ड क्रिप्स ॥
हो सका आज तक मेल नहीं।
सम्मेलन करना खेल नहीं ॥ ३ ॥

बेनी बाबू† ने कहा 'चलो',
चौबेजी बोले—"हाथ मलो"।

---

* आदरणीय पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी एम० ए० जो कवि सम्मेलन के मनोनीत सभापति थे।

† हरिश्चन्द्र कालेज, काशी के सुयोग्य प्रिंसिपल श्री बेनीप्रसाद गुप्त एम० ए०।

उक्त कालेज के अध्यापक तथा नगर के प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्ता श्री कमलाकर चौबे बी० ए० एल० टी०।

पर मेरे मन ने कहा—"यार
कुछ पैसे अब तुम और गलो" ॥
श्री सबरवाल† बोले "कुछ भी
है सत्य नहीं, जग है असार"।
घर लौटा ग्यारह के लगभग
देकर फिर से जब एक तार।
डरते डरते, सीढ़ी पर से
'वे' देवें कहीं ढकेल नहीं।
सम्मेलन करना खेल नहीं ॥ ४ ॥

पर 'वे' तो निद्रादेवी की
श्री रामाराधना में तत्पर।
नासिका-रन्ध्र से चिर परिचित
स्वर निकल रहा था घर्र घर्र ॥
उर यद्यपि था भयभीत नहीं
पर उसमें कुछ कम्पन-सा था।
धड़कन हूँ उसे न कह सकता
हाँ कुछ उत्थान पतन सा था!

---

† काशी के प्रधान पोस्टमास्टर श्रीयुत सब्बरवाल। आप बड़ी ही धार्मिक मनोवृत्ति के व्यक्ति हैं तथा साधुओं की संगति और भजन, जप आदि में निरत रहते हैं। आप श्री बेनीप्रसादजी के मित्रों में हैं।

सोचा नाहक आतंकित हूँ
मैं चोर नहीं, घर जेल नहीं।
सम्मेलन करना खेल नहीं ॥ ५ ॥

अब इन्हें जगाना होगा ही
कुछ करो नहीं फल का विचार।
यों तुम गृहिणी जी के समक्ष
डट जाओ बनकर खाकसार।"
मन की ये बातें बहुत ठीक
'स्वर' से क्या होगा उदर शान्त!
व्यञ्जन बासी हो जायेंगे
कल अभी दौड़ता है नितान्त॥
यह काया काया ही तो है
करना समुचित अवहेल नहीं।
सम्मेलन करना खेल नहीं ॥ ६ ॥

घर में था पूरा ब्लैक आउट
मैं किसी पात्र से टकराया।
जग पड़ीं चौंक कर 'वे' बोलीं—
(कुछ कुछ कम्पित थी यह काया)
अब आये हैं हजरत कहिए
क्या शान्त हो गया पागलपन!

पहिले मैके में भेज मुझे
फिर करें खूब कवि सम्मेलन!
भरवा लायें यह लालटेन
घर में मिट्टी का तेल नहीं!
सम्मेलन करना खेल नहीं॥ ७॥

फिर आज सबेरे बादल दल
आकर धमकाने लगा मुझे।
पर निकला घर से छाता लें,
कुछ भय-सा भाने लगा मुझे!!
घनघोर लगी वर्षा होने
था पता न एक सवारी का!
पर साइकिल रिक्शा एक मिला
काटता समय बेकारी का।
पैसे के कारण कौन कौन-सा
संकट सकता झेल नहीं!
सम्मेलन करना खेल नहीं॥ ८॥

मतवाला था रिक्शेवाला,
कुछ काला था रिक्शेवाला!
लख उसे भड़क कर भैंस एक
भागी, कैसा गड़बड़ झाला!!

रिक्शा करता था निज गति से—
गजगामिनियों का गर्व हरण।
कुछ दूर चला था इतने में
चीत्कार कर उठे सब साइरेन*।
थे संग हमारे सूर्य्यबली†
इससे हम भगे अकेल नहीं।
सम्मेलन करना खेल नहीं॥ ९॥

पढ़ते 'हनुमान चलीसा' हम
कूदे रिक्शे से धुवाँधार।
था एक अनाथालय समीप
जिसके दोनों थे खुले द्वार।
घुस गये उसी में हम दोनों
घुसते ही चले गये अन्दर।
"यह तो वनिताश्रम है हुजूर"
बोला तुरन्त आकर नौकर।
इस घटना की मिल सकती है
दुनियाँ में कहीं 'पैरेल' नहीं।
सम्मेलन करना खेल नहीं॥ १०॥

---

* हवाई हमले के खतरे की सूचना देने के लिए बजने वाला भोंपा! पर ये केवल अभ्यास (रिहर्सल) के लिए बजाये गये थे।

† श्री सूर्यबली सिंह, प्रसिद्ध जनसेवक।

वनिताओं का सुन कोलाहल
हम दोनों के औसान भगे।
फाटक की ओर तुरत हम ले
झोले, सोंटे सामान भगे।
पर बाहर खतरे का झोंपा,
भीतर महिलाओं का पोंपा।
फाटक पर ही चुपचाप खड़े
अपना अपना माथा ठोंका॥
भीतर बाहर के बीच खड़े
क्या लगते थे बेमेल नहीं!
सम्मेलन करना खेल नहीं॥ ११॥



यह कवि सम्मेलन श्रीहरिश्चन्द्र कालेज में हुआ था! दो अधिवेशनों के लिए श्री हरिऔधजी, तथा श्री चतुर्वेदीजी अध्यक्ष चुने गये थे! संयोजक था मैं। मुझे कई सम्मेलनों में भाग लेने तथा उनके आयोजन करने के अवसर मिल चुके हैं! पर इस सम्मेलन के करने में आरम्भ में मुझे बड़ी कठिनाइयाँ पड़ी थीं। ईश्वर को धन्यवाद है कि यह सम्मेलन श्रीयुत श्री नारायण जी तथा अनेक प्रसिद्ध कवियों ने आकर आशातीत ढंग से सफल बनाया।

—लेखक।

कवि के दो रूप

सम्मेलन में

कविता पाठ के पूर्व—

श्री गुरुचरण सरोजरज, निजमन मुकुर सुधार।
बरनौ कविवर विमल यश, जो दायक फल चार॥



कविवर के दो रूप हैं, इसे रखो तुम याद।
सम्मेलन के पूर्व अरु, सम्मेलन के बाद॥



निर्गुण से हरि होत हैं, सगुण कहत मतिमान।
सगुण होत कवि है प्रथम, निरगुन होत निदान॥



इन दोनों कवि-रूप का, वर्णन अमित अपार।
करता हूँ उपकार-हित, निज अनुभव अनुसार॥



प्रथम रूप कविका सुन्दर अब हम तुमको दिखलाते हैं।
कवि सम्मेलन होता है जब, कवि लोग बुलाये जाते हैं॥
आते हैं पत्र अनेक नेक, जिनकी रहती है मृदु भाषा—
"आइये कृपाकर आप यहाँ, हमको है दर्शन अभिलाषा॥

सुनते आते हैं नाम सुयश, दर्शन भी अबकी हो जावे।
हे महाकवे! हार्दिक इच्छा पूरी यह सबकी हो जावे॥

स्वागत में त्रुटि होगी न एक, सब साज सजाये बैठे हैं।
आइये आप जैसे भी हो हम पलक बिछाये बैठे हैं॥
बैठे हैं यहाँ प्रतीक्षा में हम मार्ग जोहते उत्तर का।
स्वीकृति आनेपर भेजेगें हम तुरत किराया इण्टर का॥

इसी भाँति के पत्र बहु, आते कवि के पास।
उसे मनाते हैं सभी, ज्यों दमाद को सास॥
अति प्रसन्न मन सोचता, कवि पाकर ये पत्र।
"लगा फैलने सुयश मम, अत्र तत्र सर्वत्र॥"

इधर नहीं कुछ काम है, बैठा हूँ बेकार।
क्या है हर्ज चला चलूँ, अबकी बार बिहार॥
किन्तु आलसी सुकवि ने, पत्र न भेजा यार।
तुरत तार शैतान सा, सर पर हुआ सवार॥

भाव यही था—देर मत करो कृपा अवतार।
आ जाओ करने सखे, हिन्दी का उद्धार॥
मनिआर्डर भी साथ ही मिला बज़रिये तार।
रुपये पूरे बीस थे, हुए सुकवि लाचार॥

क्या करते लाचार हो गये।
बाँध छान तैयार हो गये।

ताँगा किया, तयार हो गये।
प्लेटफार्म के पार हो गये॥

गाड़ी आई, चढ़े चाव से।
मोंमफली भी आधपाव से।
खाने लगे, भूल दुःख दिल का।
लगे फेंकने बाहर छिलका॥

अब पहुँचे गन्तव्य थल, गाड़ी रुकी ललाम।
दीख पड़ा नर-झुण्ड से, भरा हुआ प्लेटफार्म॥

ले हार पिन्हाया गया इन्हें।
मोटर में बिठाया गया इन्हें।
चलते थे ये सकुचाते से।
शरमाते से, बलखाते से॥

इसी भाँति कितने सुकवि, आये मय-अवदात।
एक विशाल मकान में, सबकी जुटी जमात॥

स्वागत मन्त्री जी बार—बार।
जाते थे सबके द्वार—द्वार।
कृपया चलकर जलपान करें,
कुछ चाय पियें, तब स्नान करें।

दिन भर कवि दामाद सम, सो आदर पाते।
कोई चीज हुई न कम, स्वागत की हद हो गयी॥

भोजन के पश्चात् जब, बजे रात को आठ।
हुआ शुरू पण्डाल में, सबका कविता पाठ॥
पूरे एक बजे हुआ सम्मेलन यह बन्द।
घण्टों तक आवाज कवि करते रहे बुलन्द॥
अद्वितीय यह आपने देखा कवि का रूप।
अब द्वितीय कवि-रूप नवनिर्गुन लखें अनूप॥

दूसरे दिवस दस तक सोये।
सबने उठकर फिर मुँह धोये॥
मन्त्रीजीका था पता नहीं।
शायद प्रातः थे गये कहीं॥
चपरासी से कहलाने पर।
उपमन्त्री आये एक्के पर।
बोले कहिये जलपान मिला।
खोया था जो समान मिला।
मन्त्री जी हैं बीमार पड़े।
वे हो सकते हैं नहीं खड़े।



कवि से—

हे कवि अब कुछ और सुना रे।

तज यह सजनी-सम्प्रदाय तू,

मतकर यों अब हाय हाय तू।

कर जाग्रति के नव उपाय तू,

जाग स्वयं, सोये स्वदेश को··

निज कवित्व से पुनः जगा रे।

हे कवि अब कुछ और सुना रे।

कलमल, छलछल, रुनझुन को तज,

नये साज से अब तू जा सज।

प्रेयसि के अब मत छू पदरज,

मूँछ मुड़ाना त्याग अरे कवि!

ये अपने झोटे मुड़वा रे।

हे कवि अब कुछ और सुना रे॥

क्यों उस पार सदा रहता है,

इस जग का कुछ तुझे पता है?

क्यों समाज - बन्धन खलता है,

कुछ रहस्य इसमें अवश्य है—

चुपके से मुझ को बतला रे।

हे कवि अब कुछ और सुना रे॥

हुआ विरह व्याकुल तू जब से।
बना प्रगतिवादी तू तब से।
होगा काम नहीं इस ढब से।
अब विवाह बन्धन में बंध जा।
त्याग प्रणय कुत्सित अपना रे।
हे कवि अब कुछ और सुना रे॥



ठुकरा दो या प्यार करो !

आज दही पेड़ा खा करके तुम्हें मनाने आया हूँ ।
पण्डित से पत्रा दिखवा कर तुम्हें रिझाने आया हूँ ॥

'लीडर' में वाण्टेड ज्यों देखा, त्यों ही क्षुधा नींद सब भागी ।
जाग-जाग कर किया सबेरा, तुम्हें जगाने आया हूँ ॥

कैसे घर दुवार रख रेहन बी० ए० बी० टी० पास किया ।
अपना जीवन चरित प्रेम से तुम्हें सुनाने आया हूँ ॥

मंगनी का यह सूट पहिन कर तुम्हें रिझाने आया हूँ ।
चोरी का यह बूट पहिन कर तुम्हें लुभाने आया हूँ ॥

सार्टिफिकेटों का यह बण्डल तुम्हें दिखाने आया हूँ ।
अपने नयनों का यमुना जल तुम्हें चढ़ाने आया हूँ ॥

दफ्तर-दफ्तर दौड़-दौड़ कर घिसा बूट का सारा तल्ला ।
लल्ला की महतारी-हित फिर नाच दिखाने आया हूँ ॥

दो रुपये प्रतिदिन पाते हैं हलवाई ऊपर से भोजन ।
मैं बी० ए० बी० टी० हूँ भूखा, यही बताने आया हूँ ॥

अब भी तो झुकीं तुम दे दो, विनती अंगीकार करो ।
आगे तुम जानो, क्या वश है, ठुकरा दो या प्यार करो ॥



तेल लेने जा रहा हूँ

तेल लेने जा रहा हूँ।
कीजिए शुभ कामना मैं तेल लेकर लौट आऊँ।
भीड़-गेहूँ संग में मैं घुन सरीखा पिस न जाऊँ।
हृदय में कुछ धुकधुकी है, और कुछ घबड़ा रहा हूँ।

नित्य प्रातःकाल जिनके हाथ में रहता कमण्डल।
दोपहर में नित्य कर में तेल की है एक बोतल।
देखकर यह प्रगति कितना हर्ष अनुलित पा रहा हूँ।

कल गये थे तेल लेने वही लाला रामचन्दर।
साहसी थे, घुस गये, इस हेतु निर्भय भीड़ अन्दर।
पर हुआ जो हाल, सुनिये वही हाल सुना रहा हूँ।

हाथ उचकाये हुए थे, और मुँह बाये हुए थे।
टिकट मिलता ही नहीं था, विकट घबड़ाये हुए थे।
याद कर उनकी दशा मैं भी स्वयं मुँह बा रहा हूँ।

लग रहे हर ओर से धक्के उन्हें भीषण भयानक।
बन गये थे रामचन्दर से त्रिशंकु अहा! अचानक।
सोचते थे मैं गगन की ओर उड़ता जा रहा हूँ।

क्या करें, जावें किधर वे, इधर धक्का, उधर धक्का।
जेब से उनकी घड़ी लेकर भगा कोई उचक्का।
इस घड़ी उनकी दशा को सोचकर अकुला रहा हूँ।

पर उन्हें अपनी दशा का ज्ञान तक क्या उस घड़ी था !
हैं कहाँ, क्या कर रहे, अनुमान तक क्या उस घड़ी था !
हाल उनका मैं उन्हीं की ओर से बतला रहा हूँ !

डेढ़ घण्टे तक रहे वे घूमते बनकर बगूले !
स्वयं अपनी ओर घर की सब दशा सब भाँति भूले !
मानियेगा सत्य, नहीं कुछ नमक मिर्च लगा रहा हूँ !

हाथ में अब थी न बोतल, और कुर्ता था न तन पर !
थी दुपल्ली उड़ चुकी, थीं कुछ खरोंचें भी बदन पर !
सोच कर उनकी छटा यों छटपटाहट पा रहा हूँ !

किस तरह धोती उड़ी यह कौन जाने हे तिवारी !
वे खड़े थे भीम या गामा सरीखा लँगोट धारी !
साफ था मैदान सोचा मैं सभी का खा रहा हूँ !

हे खरबूजों के देश जाग

ओ शहर, घहर, उठ साभिमान,
पण्डित जी की चुटिया समान।
क्यों सोया है अजगर समान।
चल उछल कूद बानर समान॥

तेरी छाती पर किसी समय,
छुम छुम बजती थी पायजेब।
तेरी सन्तानें मोटी थीं,
खाकर अनार अंगूर सेव॥

हा आज वहीं खुमचे वाले
हैं बेंच रहे रेवड़ी चूड़ा।
कीचड़ से गीली सड़कों पर,
है आज पड़ा सूखा कूड़ा॥

हा वही देश है जहाँ कभी
कनकौवे उड़ते धुँआधार।
प्रातः सन्ध्या गलियों तक में,
अखबार बिक रहे हैं अपार॥

खेलते जहाँ के वीर पुत्र
शतरंज दिवस भर रात रात।

गूँजती जहाँ की गलियों में,
ध्वनि भी बस केवल मात मात !!

हाँ ! आज वही की गलियों में
लेक्चरबाजी की धूम धाम ।
गलियों तक में सैलून खुले,
कुर्सी पर बैठे हैं हजाम !!

ओ देश दुपल्ली टोपी के,
तेरी छाती पर लगा हैट !
घूमते आज कालेज स्टुडेण्ट,
जिनके शरीर में नहीं कैट ।

हाँ, यहीं पचासों के बुड्ढे,
सुरमा से रंजित किये नयन !
हुक्का की नली दिये मुँह में,
करते रहते थे नित्य हवन !

अब वहीं नौ बरस का लड़का,
चश्मा से आँखें किये चार ।
पोपले बदन फूँक रहा,
फक् फक् फक् फक् फक् फक् सिगार !!

होते चुम्बन थे जहाँ युगल,
होते हैं चलते सुराख हाय !

कब्रों पर आह आशिकों के
फिरते एम० एल० ए० आज हाय

थे जहाँ नवाबों के नाती,
घूमते मस्त कर सुरा पान।
हाँ आज वही ये देश भक्त,
गाते फिरते राष्ट्रीय गान।

साकी ला इधर जाम भर दे,
था जहाँ गूँज सन्ध्या सबेर।
होतीं बहसें बिल पर अनेक,
अब वहीं हो गया हेर फेर।

रजनी में जिन उद्यानों में,
बुर्क़ा से अपना छिपा गात।
जारों के हित अभिसार निरत,
बेजार घूमती बेगमात।

हा, वहीं उन्हीं उद्यानों में
सन्ध्या के सात बजे विलोल!
सहपाठीगण से करती हैं
कालेज—कन्याएँ कलोल।

उनके सर से सर की साड़ी,
ऊँची एँड़ी के पदत्राण!

दिखलाते हैं दर्शकगण को,
भारत भविष्य जाज्वल्यमान !!

उफ़ जहाँ मृत्यु अवलम्ब बिना,
पाजामा पहिना नहीं चाह !
हो गया शत्रुओं के अधीन,
अभिमानी वाजिद अली शाह !

अब नहीं रईसों के लड़के,
निज संग बिठाकर फ़िल्मस्टार !
होटल तक आते जाते हैं,
खुद हाँक रहे हैं फोर्ड कार !

लखनऊ ! काम की रंगभूमि !
सुर्ती किमाम की रंगभूमि !
हो गयी जाम की रंगभूमि !
साहब सलाम की रंगभूमि !

रसगुल्ला का सीरा जो था।
वह आज हो गया हाय ! राब
सिक्का पलटा, उलटा विचार,
इक्का है हाँक रहे नवाब !!

ओ नगर, जाग तज दे निद्रा,
पी चाय ! हटे सुस्ती अपार !

ले ओवल्टीन, हो जा प्रबुद्ध,
दे फूँक हवाना का सिगार !!

कर दे प्रचण्ड रेडियो—नाद !
सब सिहर उठें सिनगास्टार !
चल पड़ें होटलों से सत्वर,
मेम्बर असेम्बली के अपार !!

फिर होवे तू सौभाग्य भूमि,
फिर होवे तू आराम तलब !
फिर यहाँ मिलें दो अधर युगल,
फिर फिरै दशा, सीखे तू ढब !!

लखनऊ, चेत लखनऊ, चेत,
उठ जाग, प्राप्त हो तुझे विजय !
फिर ठुमकें तबले औ मृदंग,
फिर हो भाड़ों का भाग्योदय !!

ओ मतवालों के देश जाग !
बैठे ठालों के देश जाग !
ओ खरबूजों के देश जाग !
ओ भड़भूजों के देश जाग !!



प्रेम की यह बाट !

री सखि ! प्रेम की यह बाट !

तुम यहाँ से कोस भर पर

मैं खड़ा इस विजन बन में।

साइकिल पञ्चर हुई है,

है नहीं उत्साह मन में।

पास में पैसा नहीं है।

है न इक्के का ठिकाना।

थक गया हूँ बेतरह मैं,

है अभी दो मील जाना।

और बायाँ पैर जूते ने—

लिया है काट—

री सखि, प्रेम की यह बाट।

❀ ❀ ❀

अगर आऊँ भी वहाँ तक,

तुम न बोलोगी सहेली।

मुँह फुलाये ही रहोगी,

मुँह न खोलोगी सहेली !!

मैं मनाता ही रहूँगा,
तुम झिड़कती ही रहोगी।
प्रेम की सुन दिव्य बातें,
तुम भड़कती ही रहोगी॥
पर न मैं यह सब सहूँगा,
हूँ न जाहिल जाट री
सखि प्रेम की यह बाट,

❀ ❀ ❀

जानता हूँ तुम मुझे
अब तक नहीं हो जान पायी!
इस हृदय के प्रेम को,
प्रेयसि नहीं पहिचान पायीं।
आह! आखिर सरल कैसे,
तुम बनोगी बीर बामा!
है समझ रक्खा मुझे
तुमने कुली या खानसामा।
और अपने को समझती,
हो सदा ही लाट?
री सखि! प्रेम की यह बाट,

❀ ❀ ❀

याद है वह निशा ? जब
मैंने तुम्हारे बाल आली।
बाँध दी थी खाट से
तुम जाग कर दे उठी गाली !!
और तुम भी तो चली थी,
इसी भाँति मुझे छकाने !
पर अमित निरुपाय होकर,
तुम लगी थी मुस्कुराने !!
वहाँ बाल बड़े तुम्हारे,
मैं यहाँ खल्वाट।
री सखी ! प्रेम की यह बाट !!



किसलिये न कल पाये पधार ?

इन्कायरी ऑफिस की जय हो !
उसमें सुबुद्धि का संचय हो !
उसके सुख का फिर क्या कहना,
जिससे उसका प्रिय परिचय हो !

मुझ पर उसका उपकार भार !
कितनी अनुपम ! कितनी उदार !!

जिसके अनेक जन्मान्तर के,
पुण्यों का होता है, समुदय !
है वही वहाँ बस, जा सकता,
यह परम सत्य मानो निश्चय।

आकर न देख लो एक बार !

परसों अपने भाग्योदय वश,
मुझको भी पड़ा वहाँ जाना,
गाड़ी का समय सटीक वहाँ
मुझको बतलाया मनमाना।

लौटा मैं घर हर्षित अपार !

गाड़ी में बिल्कुल भीड़ न थी
केवल कुछ योगाभ्यासी जन

दिखलाते थे नाना आसन,
अंगों का सुंदर संचालन।
कितने सुंदर वे चमत्कार!

सुख के संग दुःख लगा ही है।
उत्थान जहाँ है वहाँ पतन,
हो गयी तनिक-सी दुर्घटना,
इस योग प्रदर्शन के कारण।
टूटी टाँगें टूटे कपार।

मानिकपुर तक तो किसी भाँति,
आ पहुँचा बजते सात, मित्र।
सोचा घंटे भर में करना,
है, किसी ट्रेन को फिर पवित्र।
दस तक तो बाँदा में तयार

पर यहाँ ज्ञान का खुला नयन,
बोला जब टिकट-चेकर उन्मन।
"गाड़ी" आती दो बजे रात।
तबतक खोजिये कहीं निर्जन,
सोइये कहीं टाँगे पसार।

बरसों से थी चलती गाड़ी,
परसों से वह हो गयी बंद।

अब उसकी चर्चा मत करिये,
बोली टी० टी० ई० सुनिद्वंन्द !
प्रतिपल परिवर्तन की बहार !

'मानिक पुर' नाम रखा जिसने,
बेशक था भाषा - विज्ञानी !
मानिक के भाव जहाँ मिलता
इतना सुंदर भोजन पानी।
सुविधाओं का यह स्वर्ग द्वार !

चीनी के कुछ खाये लड्डू,
जिनमें खोए का नहीं नाम !
खो गया अगर खोआ खुद ही
इसमें अचरज का कौन काम !
बदबू करते थे वे अपार !

लड्डू, हाँ लड्डू ही तो थे,
थे अविच्छेद्य, थे चिर नवीन !
षट्‌रस का उनमें भरा स्वाद,
लड्डू या टिंक्चर आयडीन
लड्डू या बड़हर के अँचार !

मिर्चै की तरकारी भी थी,
जिसमें थी बैंगन की बहार,

बैगन वैज्ञानिक करे पृथक्,
दूँगा सौ रुपये पुरस्कार।
शे नीर-क्षीर से एक तार।

पूड़ी को यदि देता निचोड़
पाता मिट्टी का बहुत तेल,
राशन की इस कठिनाई में
करता न अँधेरे में कुलेल।
फूटता नहीं सिर बार-बार।

पर कभी तो यह स्टेशन,
कहता है करो योग-साधन,
नश्वर है यह मानव का तन,
खा-पीकर करो नहीं पोषण।
है बंद रहा करती बजार।

क्या करता हो लाचार रहा
लेटा मैं टाँग पसार रहा।
इन ऑफिस वालों पर करता
वरदानों की बौछार रहा।
पहुँचा बाँदा में बजे चार
इस लिये न कल पाया पधार॥

भइया ये कवि हैं प्रगतिशील !

देखो हट जाओ रहो शान्त,
चुप बैठो होकर परिश्रान्त !
देखो वह आता वहाँ कौन ?
हो जाओ तुम सब तुरत मौन।
कितना सुंदर इनका दर्शन,
कितना अद्भुत है आकर्षण।

ये तोड़ चुके हैं बन्ध सकल,
इनका बीहड़ मस्तिष्क धवल।
इनके नितांत है नये भाव,
इनका महिलाओं का स्वभाव।
पीड़ित सदैव उर अंतराल,
करुणा सिंचित है शब्दजाल।

मजदूरों के हैं परम मित्र,
मज़दूरिन से है प्रेम घना।
पूँजीपतियों से है विरोध,
पूँजी से पर है प्रेम बना।
इनके कंठस्वर का निनाद,
है यही विशिष्टा द्वैतवाद।

बचपन में जब चौदह के थे,
पूरी करने को निजी साध।
बेपर्दा फिरती श्यामा के संग,
नाना-नानी ने दिया बाँध।
कल्पना-नटी को सौत मान,
चिढ़ती कविता से औ निदान।

पर इन्हें चाहिये ही कुछ हो,
कविता करने का उत्तेजन।
कुछ आकर्षण कुछ समुल्लास,
कुछ अपटूडेट सुंदर साधन।
मधुकरी वृत्ति हित सभी त्याग,
घर द्वार, किया धारण विराग।

फिर भी इनमें है, विश्व प्रेम
प्रतिपल सुंदरता की तलाश।
प्रमदाओं की उन्मुक्ति हेतु,
प्रस्तुत सदैव हैं, बाहु पाश।
सिनेमा स्टारों का अभिनंदन,
करना है इनका व्रत पावन।

आवरण ही न हो अंतराय,
आवरण जहाँ है वही पाप।

कहता इनका है संप्रदाय,
बंधन मानवता का न भाय।
उन्मुक्त व्यवस्था हो समस्त,
उन्मूल और विच्छिन्न ध्वस्त।

इस जग में हैं कुछ शक्की जन,
करते सदैव छिद्रान्वेषण।
कहते हैं—यह सब है अविहित,
इसमें है, इनका स्वार्थ निहित।
कुछ इसकी तह में छिपी बात;
क्यों यह परिवर्तन अकस्मात्।

पर मुझसे जो पूछे कोई,
मैं कह सकता हूँ यह निर्भ्रम।
कहना ही क्या खा सकता हूँ
सिर पर धर इनके हाथ कसम।
ये सब हैं, पूरे सच्चरित्र,
संदेह न इसमें करो मित्र।

फिर सच्चरित्र या दुश्चरित्र,
तुम सबसे इससे क्या मतलब।
तुम कलाकार को मत देखो।
देखो तुम उसकी कला अजब।

रखता सदैव ही अपना पन,
वनवासी या नाथ का जीवन।

कर डाले बुढ़ऊ 'तुलसी' ने
तीर्थों में रह कुछ काव्य सृजन।
कर सके सूर वृन्दावन में
विनती के कुछ गायन वादन।
कवि सम्मेलन तब चार न थे,
रेडियो और अखबार न थे।

बीते युग की बीती बातें,
सुन कर देगा अब कौन दाद।
इनको देखो इनको समझो,
सुन लो इनका भी काव्यनाद।
इस युग के ये ही हैं वकील,
भइया ये कवि हैं, प्रगतिशील।



कैसे ?

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊँ मैं ?

काशी टाकी के समीप सब खुमचेवाले खड़े हुए हैं ,
बिड़ी बनानेवाले सिनेमा टिकट बेंचते अड़े हुए हैं ,
नहीं तनिक भी ये सुनते हैं, कितना भी चिल्लाऊँ मैं । तेरे० ॥

गोदोलिया पर इक्केवाले, और चौक में रिक्शेवाले ,
थाने के सामने सटे हैं, मेवेवाले गमछे वाले ,
इनका उल्लंघन दुरूह है, देख देख घबड़ाऊँ मैं । तेरे० ॥

सड़कों में ऊँटों का मेला, बैलगाड़ियों का भी रेला ,
और जतनबर पर ठेलेवाला रोक अपना है ठेला ,
समझाने से नहीं मानता फिर कैसे समझाऊँ मैं । तेरे० ॥

सभी पटरियों पर दवाइयों के विक्रेता पड़े हुए हैं ,
घाट सीढ़ियों पर भिखमंगे मानों उनमें जड़े हुए हैं ,
चौखम्भा में सांड़ खड़े हैं, कैसे उन्हें हटाऊँ मैं ।

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊँ मैं ।

तुम कल्पना करो

तुम कल्पना करो नवीन कल्पना करो,
तुम कल्पना करो।

हो गयी फ़जूल ये तमाम डिग्रियाँ;
चाटो शहद लगा-लगाके अब इन्हें मियाँ।
जीने न तुमको देंगी अपटूडेट बीबियाँ।
चुपके से रात में उठो, भागो, देहातियों
से शादियाँ करो, नवीन शादियाँ करो।
तुम कल्पना करो।

तुम हो पढ़े लिखे इधर अपढ़ ये बीबियाँ,
कैसे भला पसंद हों सकें तुम्हें मियाँ।
तुमको तो चाहिये नवीन जान यौवना।
बुढ़ऊ धरम को छोड़ जवानी के ला गले,
गलबाहियाँ करो अरे गलबाहियाँ करो।
तुम कल्पना करो।

पढ़ने से फ़ायदा ही क्या जो धर्म रह गया,
वह क्या सुधार ही न जिसमें देश बह गया?
वह धर्म क्या जवान को जो आँख दिखावे?
युवती युगल के प्रेम में जो टाँग अड़ावे?

तुम अपनी वासना की एकमात्र पूर्ती को,
बस साधना करो, प्रचंड साधना करो।
तुम कल्पना करो।

आनंद तुम करोगे, फिर भोगेगा कौन दुःख ?
यमपुर के उन मजों से न होना मियाँ विमुख।
उड़ने लगे जो लात, बिलबिला के बोलना।
रक्षा करो, बचाओ, दोहाई ऐ देशमुख,
यह कल की बात आज प्रेम धारणा करो।
तुम कल्पना करो।

तुम गालियाँ दिये चलो महन्थ सन्त को,
तुम 'सेठ' 'जमींदार' की भी भर्त्सना करो।
एकान्त में उन्हीं के घर मूँडन में छंद पढ़
रुपये लो और प्रेम से उदरस्थ यार तुम
मिष्ठान्न और पूड़ियाँ कचौड़ियाँ करो।
तुम कल्पना करो।



"चीनी सेना"

'वार' का ज़माना है
वार पर वार हो रहा है एक दूसरे पे
जनता संत्रस्त है
नाहक, फिजूल ही,
भारतीय हो।। भला 'वार' से ही डर क्यों !
हिन्दुओं के घर में तो रोज़ एक 'वार' है !
रविवार, सामवार, भौमवार, बुधवार,
गुरुवार, शुक्रवार, शनिवार, बार बार !
'वार' हो रहा है पिता पुत्र, पति पत्नी में
चचा औ भतीजे में, दामाद औ ससुर में !
हम सब बीर हैं,
डरेंगे गोले गोलियों से ?
खाते हैं गोले रोज़ चार चार गण्डों के,
गुण्डे, पण्डे, पण्डित, महन्थ और कवि लोग,
बाबुओं को देखो खाते गोलियाँ हैं वे भी नित्य
कई बार लेकर हकीम से जुलाब की !
तीन चार वर्ष हो चुके हैं युद्ध होते हुए
फँस चुका फन्दे में है मूषक मुसोलिनी
अन्त है निकट अब इन नीच नाजियों का

विश्वत्राण कारी इन पूरे पापी पाजियों का
हो रहा हमें है हर्ष
देख के प्रभावोत्कर्ष
मित्रराष्ट्र वालों का,
खूब चचा चर्चिल ने
ठोंक-ठोंक ठीक किया शत्रुओं को, वाह वाह !
गेहूँ तो मिलेगा फिर
पूड़ियाँ छनेंगी खूब
बीत गये कितने ही दिवस मालपूए बिना
ब्राह्मण और मालपूआ
दोनों का घनिष्ट प्रेम
शाश्वत है अविच्छिन्न !
चीन भी डँटा हुआ है युद्ध में अचल वीर
इतने दिनों से, खूब,
इतने थे सुस्त, कई पीढ़ी के अफीमची,
चिपट गये हैं आज
पीड़ित जापान है,
भूला खान पान है
पूरा परेशान है
दिये जा रहे हैं चीनी एक साथ धमाधम,
आ गयी है नाकों दम

खोजो मिलो जो किसी बिल में जगह घुस ।

× × ×

भारत के अन्दर भी
जनरल च्यांग काई शेक
चीनी दल के प्रधान
आये थे स्वकार्यवश
हुए प्रसन्न खूब !
देख भारतीयों का
खा करके मोहन भोग
हलुआ सोहन दिल्ली का
आगरे की दालमोट !

× × ×

एक दिन प्रातः ८ बजे का समय था ।
उठने का कर ही रहा था सुविचार मैं
सुना चीनी दल था कहीं से कहीं जा रहा,
सोचा आया होगा कोई दल फिर चीन से
लेकर अँगड़ाइयाँ मैं फिर हो गया प्रसुप्त !

× × ×

ठीक साढ़े ११ में नींद फिर मेरी खुली
सुना मेरे बूढ़े साठ साल के श्री मामा की
बाँयी टाँग की थी कोई हड्डी ही खिसक गई

बढ़िया धंधा रहे थे,
दौड़ कर गया, देखा पेड़ा विकल थे।
बोली श्रीमती जी—"चीनी दल ने दशा है की"।
"चीनी दल"।
"मेरे बूढ़े मामा और चीनी दल" बात क्या है।
वे तो भले चंगे थे।
शाम को थे घर पर।
चीनी दलसे है मुठभेड़ कब हो गयी।
बोली श्रीमती जी—तुम्हें रहता पता है कुछ
पेशा है वकालत का,
काम है अदालत का,
अभी ये गये थे लाने
चीनी अभी चाय हेतु
वहाँ उस भीड़ ने—
उसी चीनी दल ने
यह खुराफात की
मरें सारे पातकी।
"बुरा क्या है, ठीक ही है"
हैं तो वे वकील ही।
देश के हैं कितने अयोग्य यह नागरिक
चीनी ही खरीदने में जब टाँगें टूटती हैं,

और सिर फूटते हैं
तब क्या स्वराज्य लेगें !
सीख लिया दोष देना सिर्फ सरकार को !
स्वयं करते हैं क्या ?
जितने दूकानदार
सब के कुत्सित विचार
सबने भरा है अन्न, सबने भरे हैं वस्त्र
कौन बेचता है पर लेकर उचित दाम !
राजा और प्रजा पर
जब है समान कष्ट
उस वक्त सोचते मनाफ़ा हैं दूकान दार
इनको धिक्कार है धिक्कार है हजार बार !

"उनके घर से"

उनके घर से रोने की ध्वनि आयी
उस ध्वनि से मेरा गूँज उठा आँगन।

पी बटुए का सब दूध भगी बिल्ली होगी,
कल बकरी ने कम दूध दिया होगा।
मुन्शी जी ने बीबी जी को पीटा होगा,
बीबी होगी जोरों से चिल्लाई।
सप्तम स्वर में करती होंगी क्रन्दन।
उनके घर से रोने की ध्वनि आयी;
उस ध्वनि से गूँज उठा मेरा आँगन।

कम अब की तनख्वाह मिली होगी,
या कुत्ते ने काट लिया होगा।
कुर्की करने अथवा घर पर उनके
आये होंगे थाने से नायब दारोगा।
लेते होंगे रुपया, आना, पाई,
गिनते होंगे खटिया, मचिया, बासन।
उनके घर से रोने की ध्वनि आयी
उस ध्वनि से गूँज उठा मेरा आँगन।

उस पार कहीं बिजली चमकी होगी,
मजदूरिन घर पर ही ठमकी होगी।
पत्नी जी ने बरतन न मला माँजा होगा,
बासी खाया, भोजन न मिला ताजा होगा।
पूड़ी उधार देता न उन्हें अब हलवाई
मोदी उधार देता न तेल आटा बेसन।
उनके घर से रोने की ध्वनि आयी,
उस ध्वनि से गूँज उठा मेरा आँगन।

खुमचे वाले की ध्वनि सुनकर बच्चे,
मचले होंगे अनजान सरल सीधे सच्चे।
मुन्शी जी ने तब कान उमेठ दिया होगा,
लड़कों ने रो रो सिर पीटा होगा।
मुन्शी है या है पूरा कसाई
अपना है खा लेता, बच्चे करते अनशन!
उनके घर से रोने की ध्वनि आयी,
उस ध्वनि से गूँज उठा मेरा आँगन।

मुन्शी जी हैं कविता भी कर लेते,
सम्पादक के चरणों को सिर पर धर लेते।
कवि सम्मेलन के रुपये खा जाते
इससे सम्मेलन में न स्वयं हैं जा पाते।

संयोजक ने नोटिस अब होगी भिजवाई
पढ़ कर वह हो गये कड़ाही के बैंगन।
उनके घर से रोने की ध्वनि आयी,
उस ध्वनि से गूँज उठा मेरा आँगन।

लकड़ी वाले ने दाम आज माँगा होगा,
नौकर कपड़ा-लत्ता लेकर भागा होगा।
या टैक्स नहीं पा करके आज म्युनिस्पल्टी-
वालों ने पाइप काट दिया होगा।
भूली होगी सब मुन्शी जी की कविताई
लेते होंगे सन्यास तोड़कर सब बन्धन।
उनके घर से रोने की ध्वनि आयी,
उस ध्वनि से गूँज उठा मेरा आँगन।

●

'मुँहफट प्रसाद बाजपेयी'

मैं सुन्दर और असुन्दर दोनों साथ-साथ!

आता है जब कपड़े वाला बिल लेकर,
चिल्लाता है भरपेट गालियाँ देकर।
मैं छिप जाता हूं नहीं निकलता घर से,
जाने पर उसके मैं फिर खूब बिगड़कर,

खिड़की में से गर्दन निकाल चिल्लाता,
'वह कहाँ गया पाजी नालायक सूअर'।
मैं बाहर भी औ अन्दर दोनों साथ-साथ।
मैं सुन्दर और असुन्दर दोनों साथ-साथ॥

बे हथियारों से युद्ध किया करता हूं।
गालियाँ खूब भरपेट दिया करता हूं।
'छोड़ो मेरा घर निकल यहाँ से आओ,'
हँसता वह मन में कहता खूब मनाओ।

पीटता कभी भरपेट मुझे वह पाजी,
फिर स्वयं बुला मुझको करता है राजी।
मैं पोरस और सिकंदर दोनों साथ-साथ
मैं सुंदर और असुंदर दोनों साथ-साथ

अपना मंत्री वह मुझे बना है लेता,
नौकर चाकर जलपान पान है देता।
मैं शान भरा घूमा करता मोटर में,
अपने को मानूँ योग्य चराचर भर में।

तब तक वह कहता हटो यहाँ से भागो,
बस इसी मिनिट यह मेरा दफ्तर त्यागो।
भागता दबाकर दुम अपनी मैं तत्क्षण,
मैं विक्ट्री और सरेण्डर दोनों साथ-साथ।
मैं सुंदर और असुंदर दोनों साथ-साथ॥

मैं विवश और बेकार अकिंचन प्राणी,
यद्यपि तीखी तलवार सरीखी वाणी।
रुपये ले लेकर जिनसे मैं बढ़ पाया,
उन मित्रों को भी भला बुरा सुनवाया।

अपना घर तो उजड़ा जाता है प्रतिक्षण,
पर औरों के घर बनवाने का है बल।
मैं गड्हा और समुन्दर दोनों साथ-साथ।
मैं सुंदर और असुन्दर दोनों साथ-साथ।

अपनी गँवई का नाम लिया करता हूं।
पर 'उस' कस्बे का काम किया करता हूं।
मकई बजरों को हूँ सुन्दर बतलाता;
पर बिस्कुट अण्डा ही मुझको है भाता।

मित्र हूँ, कि शत्रु, न तुम समझोगे,
मैं पंचपात्र में हूँ एक्का नंबर वन।
मैं चन्दन और लवेण्डर दोनों साथ-साथ।
मैं सुन्दर और असुन्दर दोनों साथ-साथ



उल्फत

मुझको क्या तू ढूँढ़े रे बन्दे ! मैं तो तेरे पास में ।
ना मैं सिनेमा, न मैं थियेटर, न टिकट, ना फ्री पास में ।

ना गाँधी में, ना जिन्ना में, ना राजेन्द्र, सुभाष में ।
ना खद्दर में ना चरखा में, ना मोहर, चपरास में ।

ना प्रोफेसर में, ना टीचर में, ना स्टुडेण्ट, ना क्लास में ।
ना मलमल में, ना मखमल में, नहीं सिल्क या क्लास में ।

❀ ❀ ❀

मुझे ढूँढ़ना चाहे जो तू पलभर की तलाश में ।
तो तू जा ससुसार रे बन्दे, ढूँढ़ ससुर औ सास में ॥



मुखड़ा क्या देखै दरपन में ?

चूना कत्था कुछ न लगा है तेरे चन्द्रबदन में ।
मुखड़ा क्या देखै दरपन में ?

पान-पीक-रञ्जित अधरों की ऐसी छटा बदन में,
ज्यों कुछ लाल मेघ छाये हों नीलवरन मेघन में ॥

टीचर हैं मेम्बर हैं कुछ हैं लेन-देन भी करते,
मुन्शीजी की कुछ मत पूछो, हैं मौला हरफन में ॥

मैं तो नहीं जानता लेकिन मुन्शीजी कहते हैं—
स्कूल मास्टरी से बढ़ कर सुख है प्राइवेट ट्यूशन में ।

क्या है खूबी ? करे खर्च क्यों पूजा और हवन,
कौन देवताओं को पूछे, इस मँहगी देशन में ।

जयपुर से चिट्ठी आयी कल "आवें सम्मेलन में",
मैंने उत्तर दिया 'वहाँ आ सकता हूँ सावन में ।'

मई जून में जयपुर जाना, अद्भुत पागलपन है ।
पर पागल भी तो जायेंगे जयपुर-सम्मेलन में ।

पागल भी तो हैं, मनुष्य ही वे भी हैं 'साहित्यिक,
नहीं चन्द्र तो, धूमकेतु ही इस साहित्य गगन में ।

एक भेड़ने कहा प्रगतिवादी कवि से यों जाकर—
अब मैं भी रह नहीं सकूँगी खूँटे के बन्धन में ।।
ऐ टीचर, क्यों फूल रहा है गर्वभरा यों मनमें ।
बिना कसूर निकाल दिया जायेगा तू पचपन में ।।



चत्वारो मूर्ख पण्डिताः ।

कथा है बहुत बहुत प्राचीन
सुनो बच्चों तुम इसे सहेल !
न तब थे वायुयान या तार
न निकली थी मोटर या रेल !

मगध था एक प्रान्त अनमोल
जिसे कहते हैं आज बिहार !
वहाँ के नलग्राम के पास
रहा करते थे पण्डित चार !!

और उन चारों को ही, सुनो,
पुत्र था एक एक अभिराम !
चाहते थे उनके वे पिता
बनाना उनको विद्याधाम !!

न कोई कालेज था या स्कूल
न संस्कृत का ही विद्यालय !
पढ़ावें बच्चों को वे कहाँ
सदा रहते थे चिन्तामग्न !"

पूछ तुम सकते हो बच्चों
प्रश्न कर सकते हो ऐसे ?
न था विद्यालय ही तब पिता
हुए उनके पण्डित कैसे !

यहाँ 'पण्डित' से मेरा भाव
न कोई विद्वज्जन से है !
यहाँ पण्डित से मेरा भाव
बालकों ! बस 'बाभन' से है !

और वे चारो बाभन एक—
दूसरे के थे विश्वासी।
सोच कर यही किया निश्चय,
भेज दें बच्चों को काशी !

वहीं काशी में चारो पुत्र,
पढ़ेंगे छओ शास्त्र सानन्द !
और फिर अध्ययन का काम
करेंगे वे आकर स्वच्छन्द !

और फिर नलग्राम के भी
बनेंगे बालक पण्डित विज्ञ !
सभी सादर हो जावेंगे
रहेगा एक नहीं अनभिज्ञ !

करेंगे गुरु की सेवा ये।
तभी पावेंगे मेवा ये।
लगे कहने बेरी बेरी
लाभ क्या करने से देरी।

और फिर ये चारों लड़के,
नाम जिनके थे ये ही चार।
पलोटन, लोटन, घोटन और
निकोटन—क्षणमें हुए तयार॥

गये काशी, फिर वहाँ महन्थ
भकोसानन्दाश्रम के पास।
बड़ी श्रद्धा से होकर शिष्य
भक्ति से करने लगे निवास।

मिला करता था भोजन दिव्य
हुआ सबका शरीर मोटा।
मठों में भोजन की क्या कमी
वहाँ क्या भोजन का टोटा॥

और फिर ज्यों ज्यों मोटे गात
हुए, त्यों त्यों प्रतिभा भी स्थूल।
हुई, जिससे जो जो पढ़ते
तुरत ही वह जाता था भूल॥

और पढ़ते ही क्या थे वे
तर्क संग्रह, श्रुत बोध नवीन।
नीति के भी पढ़ डाले ग्रन्थ,
बुद्धि पर होती गयी मलीन॥

मलिन क्यों बुद्धि नहीं होती
बिना समझे पढ़ते थे वे।
सुना करते थे जो कुछ नहीं
गुना उसको करते थे वे।

बहुत दिन यों ही हुए व्यतीत
सभी ने सोचा लौटें घर।
यहाँ आये हम सबको हुए
आज पूरे पन्द्रह वत्सर।

गुरुजी कहते हैं हमलोग
हो चुके हैं पूरे विद्वान्।
इसलिए अब हम लोग सभी
करें अपने घर को प्रस्थान।

चले घर को फिर चारो मित्र
पलोटन, लोटन घोटन और
निकोटन जो अपने को थे
समझते बस पण्डित-शिरमौर॥

गये होंगे थोड़ी ही दूर
मिला चौराहा उनको एक।
कौन-सी पकड़ें राह नवीन
सोचने सभी लगे सविवेक।

इधर इतने में ही कुछ लोग
महाजन, सेठ अगरवाले।
जा रहे थे श्मशान की ओर
फूँकने कोई मुर्दा ले।

खोलकर पोथी लोटन ने
कहा—देखो है यही लिखा।
"जिधर से गये महाजन लोग
वही सबसे उत्तम पन्था*।"

और वे, उन बनियों के साथ
वहाँ आये, था जहाँ श्मशान।
कहो कैसे ये चारों मित्र।
अनूठे थे पण्डित विद्वान॥

---

* "महाजनोयेन गतः स पन्था" अर्थात् जिस मार्ग पर महाजन (महापुरुष) चलें, वही मार्ग अनुकरणीय है। यहाँ लोटन आदि ने महाजन का अर्थ 'बनिया' समझा!

"यहाँ अब क्या हम करें विचार
यही करते थे जब वे मित्र।
दिखाई पड़ा ऊँट तब तक,
उन्हें यह जन्तु लगा सुविचित्र ?

सोचने लगे सभी हो मौन।
जीव परमाद्भुत है यह कौन ?
तीव्र है इसकी कितनी चाल।
पैर हैं इसके बड़े विशाल॥

पलोटन ने पुस्तक खोली
कहा—देखो है साफ़ लिखा
धर्म की गति होती है तीव्र
धर्म सबसे सत्वर चलता।

"धर्म है यही, धर्म है यही
यही है धर्म, यही है धर्म"
उठे चिल्ला वे चारों मित्र
पा लिया हम लोगों ने मर्म।"

"धर्मस्य त्वरिता गतिः" धर्म उन्नतिशील है, अथवा धर्मात्मा की उन्नति शीघ्र होती है!

पुनः उन लोगों ने देखा
वहीं चरता था एक गधा।
"अरे ! यह क्या" घोटन बोला।
निकोटन ने पोथा खोला !

अजि ! देखो यह क्या है लिखा
दुःख में या जब पड़े अकाल,
या कि जब शत्रु घेर लेवें
लगा जब हो अभियोग विशाल !

या कि जब हो श्मशान में वास
वहाँ पर जो भी देवे साथ !
मान कर मित्र उसे अपना
प्रेम से उसे झुकाओ माथ !"

यही उन लोगों ने किया,
चूम कर उस गर्दभ के पैर।
लगे कहने—तुम सच्चे मित्र
न तुमसे हममें कोई बैर !

न तुमसा कोई है प्यारा !
रूप यह कैसा है न्यारा।
पक्षोटन तब तक पुस्तक खोल
लगा कहने यह सब है झोल !

यहाँ देखो ऋषि कहते क्या
धर्म से करे इष्ट योजना।
अतः इस प्रिय गर्दभ को हम
धर्म संयुक्त करें, इस दम।

और उन चारों ने मिल
गधे के पकड़े चारों पाँव।
ले चले उसे घसीट घसीट
ऊँट वह चरता था जिस ठाँव॥

पलोटन ने पगड़ी खोली
पैर गर्दभ के बाँध तुरन्त।
ऊँट की दुम में बाँधा उसे,
रेंकने गर्दभ लगा तुरन्त।

कहीं से धोबी आ निकला,
हाल जो यह उसने देखा।
लिये लाठी दौड़ा कर क्रोध
पण्डितों से लेने प्रतिशोध॥

मित्र वे चारों ही घबड़ा
भगे लेकर पोथी पत्रा।
गिर पड़ा कोई सिर फूटा।
किसी का हाथ पैर टूटा॥

"इष्टं धर्मेणयोजयेत्" प्रिय वस्तु को धर्म के काम में लगावे।

रात भर भागे ही वे गये
सबेरे मिला एक फिर ग्राम।
सोचने लगे बहुत थक चुके
तनिक अब कर लेवें विश्राम।

गाँव वालों ने देखा इन्हें
कहा है भाग्य हमारे धन्य।
अतिथि हैं आप हमारे हुए
अतिथि अपमानी बड़ा जघन्य।

अतिथि की सेवा परम पुनीत
कीजिए तनिक नहीं संकोच।
कीजिए भोजन औ विश्राम
हमारे घर को अपना सोच॥

गाँव के जमींदार साहब
पर्लोटन लोटन को ले साथ।
चले, बाकी दोनों से एक
महाशय बोले—हमें सनाथ

कीजिए बाकी दोनों जन।
हमारे घर होवे भोजन॥
सभी हैं सेवा के इच्छुक
आप दो जन तो आवें तक।

यही फिर हुआ पलोटन और
निकोटन जमींदार के घर।
गये लोटन घोटन दोनों
साथ इन सज्जन के घर पर।

उच्च ये जमींदार धनवान
दूसरे सज्जन निर्धन व्यक्ति।
किन्तु निज शक्ति वित्त अनुसार
अतिथि पर थी दोनों की भक्ति।

सामने लोटन घोटन के
थालियों में बाटी आयी।
नहीं खाया था पहिले कभी
बुद्धि दोनों की चकरायी।

कहा लोटन ने "घोटन मित्र!
कौन-सा है यह नया पदार्थ।
कहा घोटन ने पुस्तक खोल
देख लो इसका रूप यथार्थ!

लिखा इसमें है देखो साफ
छिद्र में होते बड़े अनर्थ!
छिद्र हैं इस पदार्थ में सखे!
करेंगे क्या खाकर यह व्यर्थ!

छोड़कर आसन दोनों उठे,
अतिथेयी तब घबड़ाया !
अरे यह क्यों जाते हैं सब
बहुत ही उसने समझाया !!

यहाँ लेकिन सुनता है कौन
किया धारण दोनों ने मौन !
चले, मिलता भोजन तज कर !
बिना समझे पुस्तक पढ़ कर !!

उधर उस जमींदार के यहाँ
निकोटन और फ्लोटन जी !
स्नान सन्ध्या कर भोजन हेतु
अभी जाकर थे बैठे ही !

कि तब तक चाँदी के दो थाल,
भरे रोवई से विशद विशाल !
सामने रखे गये त्यों ही
चौंक कर भागे दोनों ही !

"छिद्रेष्वनर्थाः बहुली भवन्ति !" छिद्र अर्थात् रहस्योद्घाटन या गुप्त बात फूटने से आपत्तियों का सामना करना पड़ता है।

अरे ! ये लम्बे लम्बे सूत !
साँप है, गोजर हैं या क्या !
न सेंवई खायी थी, प्रतिदिन
मिला केवल पूड़ी हलुवा !

दाल रोटी या भात कभी
वहाँ काशी में खाते थे !
मिठाई पूड़ी हलवे ही
प्रेम से वहाँ उड़ाते थे !

किन्तु सेवई थी नूतन वस्तु
इसी से दोनों घबड़ाये !
कई क्षण तक दोनों संत्रस्त
खड़े थे केवल मुँह बाये !

निकोटन ने खोली पुस्तक
देख लो यदि न तुम्हें विश्वास !
अरे जो हुआ दीर्घ सूत्री,
हुआ उसका तुरन्त ही नाश !!

"दीर्घ सूत्री विनश्यति" अर्थात् आलसी लोगों का नाश हो जाता है। इन दोनों ने समझा बड़ी बड़ी सूतवाली सेंवई नाश कर देगी !

कहा लोगों ने कितना ही,
किन्तु भोजन पानी का त्याग !
चले दोनों, पथ में मिल गये
शेष दोनों भी, धन्य दिमाग !

गांव वाले हंसते थे देख—
अजब हैं ये 'पण्डित ज्ञानी !
सदा पुस्तक की लेते शरण
और करते हैं मनमानी !

इधर ये चारों मित्र पवित्र,
क्षुधित प्यासे चलते थे राह !
कि तब तक नदी मिली मग में,
पाट था चौड़ा, तेज प्रवाह !!

एक पत्ता आता था बहा,
खोल पुस्तक लोटन ने कहा—
"आ रहा है पत्ता जो धार !
हमें पहुँचा देगा उस पार" !

"आगमिष्यति यत् पत्रं तदस्मान् तारयिष्यति"

यह जो पत्र (सवारी) आ रहा है, हमें पहुँचा देगा। लोटन ने पत्र का अर्थ पत्ता "समझा !'

और यह कह कर कूदा वह
तुरत ही लोटन पत्ते पर
बह चला, देख उसे घोटन
खोल पुस्तक बोला सत्वर—

हो रहा हो जब पूरा नाश
बचा लेते पण्डित आधा।
काट लूँ सिर लोटन का मैं
दूर होगी इससे बाधा।

इस तरह घोटन ने सिर काट
लिया लोटन का



कबीर के कुछ और दोहे

स्वयं लाट जाचक भये, दिया द्रव्य इफरात!
तातें 'सर' भये सेठजी, दिया दूर नहि जात!!

दाढ़ी बाढ़े पदन यदि, आँगन बाढ़े घास!
तुरत छील कर फेंकिये, यहि सज्जन-गुन खास!!

❀ ❀ ❀

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय!
सेठ लाख देवें न क्यों, 'सर' किसमत में होय!

दया कौन पर कीजिए, कापै निर्दय होय!
साईं के सब जीव हैं, कीड़ा और मकोय!!



वे दोनों—

पढ़ा करते हैं वेदान्त,
रात दिन नीरस मन भनभन!
घूमना उनको भाता है
अँधेरे में उपवन उपवन!

× × ×

रहा करते "दर्शन" में व्यस्त
न करते हैं उनका दर्शन।
करेंगी फिर न भला क्यों वे
स्वयं ही अपना अनुरंजन।

× × ×

इन्हें मन्दिर में पावेंगे
उन्हें सिनेमा या क्लब में आप!
चिढ़ा करती हैं इनकी माँ,
चिढ़ा करते हैं उनके बाप!

अजब यह गठ बन्धन अनमेल, एक अद्भुत है खेल हुआ।
बहुत चाहा गैरों ने किन्तु, न इनसे उनसे मेल हुआ॥

जिसमें नहीं छुट्टियाँ स्कूल में हों,
वह सावन की ऋतु सावन ही नहीं!

नहीं मूल से ब्याज विशेष आ ले,

यह सेठ है ठेठ महाजन ही नहीं!

जिसमें कवियों की जमात जुटी

करती कविता में निंदन ही नहीं!

यह मुण्डन मुण्डन ही नहीं है

कनछेदन भी कनछेदन ही नहीं!



लेट मिस्टर वेदव्यास

['कालपी ८ अगस्त । श्री सम्पूर्णानन्दजी ने लेट मिस्टर वेदव्यास की प्रशंसा की....' नेशनल हेरल्ड का एक समाचार। इसपर शिक्षा मन्त्री सम्पूर्णानन्द जी ने हेरल्ड सम्पादक श्री चेलापति राव से शिकायत की कि अठारह पुराणों और महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास को मिस्टर वेदव्यास नहीं कहना चाहिये ।]

बधाई बाबा वेदव्यास ।

हुए आज मिस्टर महर्षि से कैसा शुभ्र विकास ।
पोंगा-पन्थी थे पुराण के गप्पाष्टकी प्रणेता ।
तुम्हें बताते दकियानूसी थे भारत के नेता ।
फिदा आज तुम पर शिक्षा-मन्त्री सम्पूर्णानन्द ।
उदित भाग्य हो गया तुम्हारा मौज करो स्वच्छन्द ।
इसी खुशी में चेलापति ने हे गुरुवर विज्ञानी ।
मिस्टर की तुमको उपाधि दे डाली है लासानी ।
अब जब देव सभा में या मुनिमण्डल में तुम जाना ।
मत महर्षि कहना अपने को मिस्टर व्यास बताना ।
चकित अचंभित विस्मित विथकित पुलकित औ अकुलाये ।
रह जायेंगे तुम्हें देखकर सभी लोग मुँह बाये ।
मिस्ट्री है मिस्टरी-कारण की मिस्ट्री के विज्ञाता ।
चेलापतिजी—एकमात्र सम्पादक भाग्य-विधाता ॥ १ ॥

मिस्टर व्यास विधायक जय हे, हे हेरल्ड सुखदाता।
पंजाब सिन्ध मद्रास मराठा द्राविड़ उत्कल बंगा।
सभी प्रान्त वालों का यू० पी० में हरदम हुरदंगा।
यू० पी० वाले देख देखकर मुँह बाये रह जाते।
मिस्टर नारद, मिस्टर तुलसी, मिस्टर सूर बनाओ।
मिस्टर ब्रह्मा, मिस्टर विष्णु, मिस्टर शिव छपवाओ।
मिस्टर की फेहरिस्त बना दो हे नेशनल हेरल्ड।

निज लेखनी उठाये
लिखो जो मन में आये
हे सम्पादक चाचा!
जय हे चेलापते!
अद्भुत-मते जय हे!
लेहू वा पूड़ी बटे! ॥ २ ॥

उलहना

मेरे मानस की तुम सुलझी
 बातें उलझाते कहाँ चले!
छुप्पलबाज़ों से तुम अब यों,
 चप्पल चटकाते कहाँ चले!
मुँह में पानी को ठूँस ठूँस,
 यों पीक चुआते कहाँ चले!
दिल को ही चुराते थे अब तक,
 फाउण्टेन को चुराते कहाँ चले!



कुण्डलियाँ

साईं ये न विरुद्धिये, सम्पादक, अखबार।
कम्पोजीटर प्रेस के, प्रूफ विलोकन हार॥
प्रूफ विलोकन हार, प्रकाशक औ विक्रेता।
मेम्बर, वोटर, चेयरमैन, नाऊ औ नेता!
कह गिरधर कविराय, भले छाड़ै कविताई।
इन ग्यारह सों बचै, विरुधै इन्हें न साईं॥
सम्पादक होई कीजिये सपनेहु नहिं अभिमान।
चञ्चल जल दिन चारि को ठाउँ न रहत निदान।
ठाउँ न रहत निदान, छापि कविता यश लीजै।
'प्रोपोगेंडा' दिखलाय, विनय सबही की कीजै।
कह गिरधर कविराय, लेख लिखवैं नहिं मादक।
मैनेजर खुश किये, आप रहिहैं सम्पादक॥

ये कवि—

निराले हैं ये कवि सारे !
किसी देश में ऐसे कविगण हुए नहीं उत्पन्न !
जैसे इस हिन्दी भाषा के कविगण गुण सम्पन्न !
गर्व इन पर हम हैं धारे !
निराले हैं ये कवि सारे !
स्वार्थ रहित है इनका जीवन,
त्याग पूर्ण है देह !
कोई कभी भला कर सकता—
है इसमें सन्देह !
निराशा - नभ के हैं तारे !
अजब हिन्दी-नेता सारे !!
सदा भ्रमण करते रहते हैं,
घर की तनिक न याद।
कभी बनारस, कभी आगरा
कभी एलाहाबाद !
कभी पटना, छपरा आरे
निराले हैं ये कवि सारे !
मुण्डन हो या हो कनछेदन,
या प्रदर्शिनी भोंड़ी !

कौन जगह है जिसे कि इन
हिन्दी कवियों ने छोड़ी !
फिरा करते मारे मारे !
निराले हैं ये कवि सारे !!

× × ×

पुरस्कार दस पाँच थमा दो
दे दो इण्टर क्लास !
गुड़ पर मक्खी के समान ये
दौड़ेंगे सहुल्लास !
घूरे क्यों पण्डे बेचारे ?
निराले हैं ये कवि सारे !



"पानी पाँड़े"

अब—

अब भी मैं उनको लेने को
जब तब लखनऊ चला जाता !
पर पानी पाँड़े का सुन्दर
दर्शन है हाय न हो पाता !

सुनता हूँ कुछ नेताओं ने
उस पर कुछ एतराज किया।
"हिन्दू पानी मुसलिम पानी ने
हमसे दूर स्वराज किया !"

"अब पानी पाँड़े का कोई
सेकुलर भारत में नहीं स्थान !
कट्टर अथवा जेनरल भोजन
पानी का बस होगा विधान !"

सोडा लेमनेड आइस की ही
स्टेशन पर है अब धूम धाम !
'कट्टर' 'जेनरल' कण्डाल घरे
रहते स्टेशन पर निकट धाम !

जो चाहे जाकर पी लेता
अपने से है जेनरल पानी !
दुर्गन्ध युक्त, बासी, सड़ियल
यह प्रगतिवाद है लासानी !'

कराडालों और कमोरों में
सब के ही अब जूठे गिलास ।
पाते प्रवेश, टी० बी०—प्रचार
होता रहता है आस पास !

कर आज 'वनस्पति' का भोजन
पी ऊपर से जनरल पानी !
टी० बी० का करते हैं स्वागत
ये सब सेकुलर हिन्दुस्तानी ।

यदि चाहा सचमुच स्वस्थ रहे
यह देश—शुचता फैलाओ !
भराडा सराब को दूर करो
पानी पाँड़े को फिर लाओ !

यह जेनरलपना विदेशीपन
हैं भारतीय पानी पाँड़े ।
पानी पाँड़े की जय बोलो
हैं माननीय पानी पाँड़े ॥



राव—

सुनिये घटना इतिहासमयी
सन् एकतालिस था, मास मई
था मुझे लखनऊ तक जाना
मैके से था उनको लाना
खाना खाकर, पानी पीकर
पहने कपड़े सामान लिया
डब्बे में रख जलपान लिया
पनडब्बे में रख पान लिया।
ताँगा पहुँचा जब तीन मील
तब मुझे मिला मेहरा सुशील
बोला—"देहरा तो छूट गया
मानो मुझको कर शूट गया!
ताँगे वाला उत्साही था
बोला—हुजूर कुछ हर्ज नहीं
जाता है एक पसिंजर भी
उससे जाना क्या फर्ज नहीं?
तब मैंने ताँगे वाले के
मुख को देखा, मस्ताना था!
गाड़ी क्यों छूटी, समझ गया,
वह ताँगे वाला काना था।!

झख मार, बात उसकी मानी
उससे ही चलने की ठानी
स्टेशन पहुँचा, दम फूल गया
पानी लाना था भूल गया।

थी साथ सुराही नहीं हाय
मैं पूरा आज कुराही था।
वे होती स्मरण दिला देती,
इस बार दोष अपना ही था।

उस पर था भीषण मई मास
थी हरी एक भी नहीं घास।
लू की लपटें थीं आसपास
मानों क्रोधित हो रही सास॥

पथ में कितने टेसन आये
पर सबके सब थे बेपानी।
थे कुएँ दूर पर जल वाले
टेसन थे केवल नल—वाले

नल में जल का था नाम नहीं
यात्री सब चीं चीं करते थे।
टोंटी उमेठते थे वे जब
उनसे सब सीं सीं करते थे॥

कितनी वृद्धाएँ विकल हुईं
कितने बच्चे बेहोश हुए
कितने गालियाँ लगे बकने
कितने निराश खामोश हुए !

दो एक जगह, नल में जल था
पर वह जल था पूरा 'अदहन' !
पीना तो उसका दूर रहा
छूना तक होता नहीं सहन !!

मौसी काकी, फूफी, अम्मी
भैया, चाची, मामी, नानी
जीजी, ताई, से माँग रहे
बच्चे बस थे पानी - पानी !!

पानी पानी पानी अब्बा !
पानी पानी पानी बब्बा !
पानी पानी पानी पानी !
चिल्लाता था सारा डब्बा !

यों विफल छटपटाते रोते
सिर धुनते सब पछताते थे !
पानी पाँड़े पानी पाँड़े'
पानी पाँड़े चिल्लाते थे !!

जब स्टेशन आगे बढ़ने पर
गुलजार गोसाई गंज मिला।
तब जाकर सब की प्यास मिटी
सबका तब मानस-कंज खिला ॥

देखा सबने ज्यों ही कोई
बामन देवता हैं स्थूल काय !
लोटा बालटी लिये कर में
कन्धे पर गमछा रहा न्याय !

सोचा साढ़े साती उतरे
सिर से, अब होगा भाग्योदय !
सब ने बस जय जय कार किया
बोले "पानी पाँड़े" की जय !!

"पानी पाँड़े पानी पाँड़े"
पानी पानी पानी पानी
इस ओर, इधर, इस ओर, इधर,
इसमें, इसमें, ओ बर दानी !"

पानी पाँड़े था एक मगर
सबको पानी पहुँचाता था।
उन सब की चीख पुकारों से
मन में न तनिक घबड़ाता था !

चश्मे के भीतर से उसकी
हँसती थीं आँखें मन्द मन्द !
कर उसके जल बरसाते थे
आँखें बरसाती थीं मरन्द !

बुड्ढा था पर अब के जवान
दस बीस झटक दे सकता था !
कितने ही कुस्ती बाजों को
यह वृद्ध पटक दे सकता था !

खाया था दूध मलाई, घी
रुपये का जब था डेढ़ सेर !
अब शुद्ध डालदा का सेवन !!
है समय बीतते नहीं देर !

'राशन ! किसको कहते हैं यह
पानी पाँड़े तब क्या जानें !
रोचक भोजन करता सबका,
पानी देना बस मत माने !!

हाँ, दौड़ दौड़ वह घूम घूम,
सबको ही पानी दे आया।
दस मिनट रुकी गाड़ी थी पर
सबने मन भर पानी पाया ॥

जब गाड़ी खुली सभी के मन
हर्षित थे, सब थे अब निर्भय !
सब एक साथ ही बोल उठे
बोलो पानी पाँड़े की जय !!

क्या सुन्दर, स्वच्छ, मधुर, शीतल
कूपोदक था, मिट गयी प्यास !
पानी पाँड़े की हाँट-बुध—
से हार गया था मई मास !!
